विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि
महोत्सव के उपलक्ष्य में षष्ठम खण्ड

अभिधान राजेन्द्र कोष में,
सूक्ति-सुधारस

षष्ठम खण्ड

दिव्याशीष प्रदाता :
परम पूज्य, परम कृपालु, विश्वपूज्य
प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आशीषप्रदाता :
राष्ट्रसन्त वर्तमानाचार्यदेवेश
श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा.

प्रेरिका :
प. पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी
साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

लेखिका :
साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)
साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)

सुकृत सहयोगी
श्री सौधर्म बृहत्तपोगच्छीय सकल श्रीसंघ,
धाणसा (राजस्थान) जिला-जालोर

प्राप्ति स्थान
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा – शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता
सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
फोन : (०२९६९) २०१३२

प्रथम आवृत्ति
वीर सम्वत् : २५२५
राजेन्द्र सम्वत् : ९२
विक्रम सम्वत् : २०५५
ईस्वी सन् : १९९८
मूल्य : ७५-००
प्रतियाँ : २०००

अक्षराङ्कन
लेखित
१०, रूपमाधुरी सोसायटी, माणेकबाग, अहमदाबाद-१५

मुद्रण
सर्वोदय ओफसेट
प्रेमदरवाजा बहार, अहमदाबाद.

अनुक्रम

कहाँ क्या ?



विश्व ... ीय
श्रीमद्विजय ... श्वरजी म.





परम पूज्या सरलस्वभाविनी साध्वीरत्ना
श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

1

समर्पण

रवि-प्रभा सम है मुखश्री, चन्द्र सम अति प्रशान्त ।
तिमिर में भटके जनके, दीप उज्जवल कान्त ॥ १ ॥

लघुता में प्रभुता भरी, विश्व-पूज्य मुनीन्द्र ।
करुणा सागर आप थे, यति के बने यतीन्द्र ॥ २ ॥

लोक-मंगली थे कमल, योगीश्वर गुरुराज ।
सुमन-माल सुन्दर सजी, करे समर्पण आज ॥ ३ ॥

अभिधान राजेन्द्र कोष, रचना रची ललाम ।
नित चरणों में आपके, विधियुत् करें प्रणाम ॥ ४ ॥

काव्य-शिल्प समझें नहीं, फिर भी किया प्रयास ।
गुरु-कृपा से यह बने, जन-मन का विश्वास ॥ ५ ॥

प्रियदर्शना की दर्शना, सुदर्शना भी साथ ।
राज रहे राजेन्द्र का, चरण झुकाते माथ ॥ ६ ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु
साध्वी प्रियदर्शनाश्री
साध्वी सुदर्शनाश्री

2

शुभाकांक्षा !

विश्वविश्रुत है

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष ।

विश्व की आश्चर्यकारक घटना है ।

साधन दुर्लभ समय में इतना सारा संगठन, संकलन अपने आप में एक अलौकिक सा प्रतीत होता है । रचनाकार निर्माता ने वर्षों तक इस कोष प्रणयन का चिन्तन किया, मनोयोगपूर्वक मनन किया, पश्चात् इस भगीरथ कार्य को संपादित करने का समायोजन किया ।

महामंत्र नवकार की अगाध शक्ति ! कौन कह सकता है शब्दों में उसकी शक्ति को । उस महामंत्र में उनकी थी परम श्रद्धा सह अनुरक्ति एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ उनकी थी परम भक्ति!

इस त्रिवेणी संगम से संकल्प साकार हुआ एवं शुभारंभ भी हो गया । १४ वर्षों को सतत साधना के बाद निर्मित हुआ यह अभिधान राजेन्द्र कोष।

इसमें समाया है सम्पूर्ण जैन वाङ्मय या यों कहें कि जैन वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है यह कोष । अंगोपांग से लेकर मूल, प्रकीर्णक, छेद ग्रन्थों के सन्दर्भों से समलंकृत है यह विराट्काय ग्रन्थ ।

इस बृहद् विश्वकोष के निर्माता हैं परम योगीन्द्र सरस्वती पुत्र, समर्थ शासनप्रभावक , सत्क्रिया पालक, शिथिलाचार उन्मूलक, शुद्धसनातन सन्मार्ग प्रदर्शक जैनाचार्य विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा !

सागर में रत्नों की न्यूनता नहीं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' यह कोष भी सागर है जो गहरा है, अथाह है और अपार है । यह ज्ञान सिंधु नाना प्रकार की सूक्ति रत्नों का भंडार है ।

इस ग्रन्थराज ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की । मनीषियों की मनीषा में अभिवृद्धि की ।

इस महासागर में मुक्ताओं की कमी नहीं । सूक्तियों की श्रेणिबद्ध पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक है जन-जन के सम्मुख 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड)।

मेरी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी सुसाध्वी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुसाध्वीश्री डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने अपनी गुरुभक्ति को प्रदर्शित किया है इस 'सूक्ति-सुधारस' को आलेखित करके। गुरुदेव के प्रति संपूर्ण समर्पित उनके भाव ने ही यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखने को प्रोत्साहित किया है उनको।

यह 'सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) जिज्ञासु जनों के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है। 'गागर में सागर है'। गुरुदेव की अमर कृति कालजयी कृति है, जो उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना की सतत अप्रमत्त स्थिति को उजागर करनेवाली कृति है। निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहकर तपोधनी गुरुदेवश्री 'महतो महियान्' पद पर प्रतिष्ठित हो गए हैं; उन्हें कषायों पर विजयश्री प्राप्त करने में बड़ी सफलता मिली और वे बीसवीं शताब्दि के सदा के लिए संस्मरणीय परमश्रेष्ठ पुरुष बन गए हैं।

प्रस्तुत कृति की लेखिका डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी अभिनन्दन की पात्रा हैं, जो अहर्निश 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के गहरे सागरमें गोते लगाती रहती हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पेठ' की उक्ति के अनुसार श्रम, समय, मन-मस्तिष्क सभी को सार्थक किया है श्रमणी द्वयने।

मेरी ओर से हार्दिक अभिनंदन के साथ खूब-खूब बधाई इस कृति की लेखिका साध्वीद्वय को। वृद्धि हो उनकी इस प्रवृत्ति में, यही आकांक्षा।

राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञानमंदिर — ***विजय जयन्तसेन सूरि***

अहमदाबाद

दि. २९-४-९८ अक्षय तृतीया

3

[illegible]

विदुषी डॉ. साध्वीश्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजीम. आदि,

अनुवंदना सुखसाता ।

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) एवं 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' की पाण्डुलिपियाँ मिली हैं। पुस्तकें सुंदर हैं। आपकी श्रुत भक्ति अनुमोदनीय है। आपका यह लेखनश्रम अनेक व्यक्तियों के लिये चित्त के विश्राम का कारण बनेगा, ऐसा मैं मानता हूँ। आगमिक साहित्य के चिंतन स्वाध्याय में आपका साहित्य मददगार बनेगा।

उत्तरोत्तर साहित्य क्षेत्र में आपका योगदान मिलता रहे, यही मंगल कामना करता हूँ।

उदयपुर

14-5-98

पद्मसागरसूरि

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

कोबा-382009 (गुज.)

4

जिनशासन में स्वाध्याय का महत्त्व सर्वाधिक है। जैसे देह प्राणों पर आधारित है वैसे ही जिनशासन स्वाध्याय पर। आचार-प्रधान ग्रन्थों में साधु के लिए पन्द्रह घंटे स्वाध्याय का विधान है। निद्रा, आहार, विहार एवं निहार का जो समय है वह भी स्वाध्याय की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए है अर्थात् जीवन पूर्ण रूप से स्वाध्यायमय ही होना चाहिए ऐसा जिनशासन का उद्‌घोष है। वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इन पाँच प्रभेदों से स्वाध्याय के स्वरूप को दर्शाया गया है, इनका क्रम व्यवस्थित एवं व्यावहारिक है।

श्रमण जीवन एवं स्वाध्याय ये दोनों-दूध में शक्कर की मीठास के समान एकमेक हैं। वास्तविक श्रमण का जीवन स्वाध्यायमय ही होता है। क्षमाश्रमण का अर्थ है 'क्षमा के लिए श्रम रत' और क्षमा की उपलब्धि स्वाध्याय से ही प्राप्त होती है। स्वाध्याय हीन श्रमण क्षमाश्रमण हो ही नहीं सकता। श्रमण वर्ग आज स्वाध्याय रत हैं और उसके प्रतिफल रूप में अनेक साधु-साध्वी आगमज्ञ बने हैं।

प्रातःस्मरणीय विश्व पूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भागों का निर्माण कर स्वाध्याय का सुफल विश्व को भेंट किया है।

उन सात भागों का मनन चिन्तन कर विदुषी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजीम. की विनयरत्ना साध्वीजी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी ने " अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" को सात खण्डों में निर्मित किया हैं जो आगमों के अनेक रहस्यों के मर्म से ओतप्रोत हैं।

साध्वी द्वय सतत स्वाध्याय मग्ना हैं, इन्हें अध्ययन एवं अध्यापन का इतना रस है कि कभी-कभी आहार की भी आवश्यकता नहीं रहती। अध्ययन-अध्यापन का रस ऐसा है कि जो आहार के रस की भी पूर्ति कर देता है।

'सूक्ति सुधारस' (१ से ७ खण्ड) के माध्यम से इन्होंने प्रवचनसेवा, दादागुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के वचनों की सेवा, तथा संघ-सेवा का अनुपम कार्य किया है।

'सूक्ति सुधारस' में क्या है ? यह तो यह पुस्तक स्वयं दर्शा रही है। पाठक गण इसमें दर्शित पथ पर चलना प्रारंभ करेंगे तो कषाय परिणति का ह्रास होकर गुणश्रेणी पर आरोहण कर अति शीघ्र मुक्ति सुख के उपभोक्ता बनेंगे; यह निस्संदेह सत्य है।

साध्वी द्वय द्वारा लिखित ये 'सात खण्ड' भव्यात्मा के मिथ्यात्वमल को दूर करने में एवं सम्यग्दर्शन प्राप्त करवाने में सहायक बनें, यही अंतराभिलाषा.

भीनमाल

वि. संवत् २०५५, वैशाख वदि १० *मुनि जयानंद*

5

पुरोवाक्

लगभग दस वर्ष पूर्व जालोर - स्वर्णगिरितीर्थ - विश्वपूज्य की साधना स्थली पर हमनें 36 दिवसीय अखण्ड मौनपूर्वक आयम्बिल व जप के साथ आराधना की थी, उस समय हमारे हृदय-मन्दिर में विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी गुरुदेव श्री की भव्यतम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई, जिसके दर्शन कर एक चलचित्र की तरह हमारे नयन-पट पर गुरुवर की सौम्य, प्रशान्त, करुणार्द्र और कोमल भावमुद्रा सहित मधुर मुस्कान अंकित हो गई। फिर हमें उनके एक के बाद एक अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भाग दिखाई दिए और उन ग्रन्थों के पास एक दिव्य महर्षि की नयन रम्य छवि जगमगाने लगी। उनके नयन खुले और उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में हमें संकेत दिए ! और हम चित्र लिखित-सी रह गईं। तत्पश्चात् आँखें खोली तो न तो वहाँ गुरुदेव थे और न उनका कोष। तभी से हम दोनों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम विश्वपूज्य एवं उनके द्वारा निर्मित कोष पर कार्य करेंगी और जो कुछ भी मधु-सञ्चय होगा, वह जनता-जनार्दन को देंगी ! विश्वपूज्य का सौरभ सर्वत्र फैलाएँगी। उनका वरदान हमारे समस्त ग्रन्थ-प्रणयन की आत्मा है।

16 जून, सन् 1989 के शुभ दिन 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति-सुधारस' के लेखन -कार्य का शुभारम्भ किया।

वस्तुतः इस ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा हमें विश्वपूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा-वृष्टि, दिव्याशीर्वाद, करुणा और प्रेम से ही मिली है।

'सूक्ति' शब्द सु + उक्ति इन दो शब्दों से निष्पन्न है। सु अर्थात् श्रेष्ठ और उक्ति का अर्थ है कथन। सूक्ति अर्थात् सुकथन। सुकथन जीवन को सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से अलंकृत करने के लिए उपयोगी है। सैकड़ों दलीलें एक तरफ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ। सुत्तनिपात में कहा है –

'विञ्ञात सारानि सुभासितानि' [1]

सुभाषित ज्ञान के सार होते हैं। दार्शनिकों, मनीषियों, संतों, कवियों तथा साहित्यकारों ने अपने सद्ग्रन्थों में मानव को जो हितोपदेश दिया है तथा

---

1. सुत्तनिपात - 2216

महर्षि-ज्ञानीजन अपने प्रवचनों के द्वारा जो सुवचनामृत पिलाते हैं - वह संजीवनी औषधितुल्य है ।

नि:संदेह सुभाषित, सुकथन या सूक्तियाँ उत्प्रेरक, मार्मिक, हृदयस्पर्शी, संक्षिप्त, सारगर्भित अनुभूत और कालजयी होती हैं । इसीकारण सुकथनों / सूक्तियों का विद्युत्-सा चमत्कारी प्रभाव होता है । सूक्तियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में कहा है — "महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देनेवाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं ।"[1] यही बात शब्दान्तर में आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में कही है — "मनुष्य के अन्तर्हृदय को जगाने के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, लोक-कल्याण के लिए, विश्व-शान्ति और सम्यक् तत्त्व का बोध देने के लिए सत्पुरुषों की सूक्ति का प्रवर्तन होता है ।" [2]

सुवचनों, सुकथनों को धरती का अमृतरस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । कालजयी सूक्तियाँ वास्तव में अमृतरस के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित रही हैं और अमृत के सदृश ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है । इस संजीवनी रस के सेवन मात्र से मृतवत् मूर्ख प्राणी, जिन्हें हम असल में मरे हुए कहते हैं, जीवित हो जाते हैं, प्राणवान् दिखाई देने लगते हैं । मनीषियों का कथन है कि जिसके पास ज्ञान है, वही जीवित है, जो अज्ञानी है वह तो मरा हुआ ही होता है । इन मृत प्राणियों को जीवित करने का अमृत महान् ग्रन्थ अभिधान-राजेन्द्र कोष में प्राप्त होगा । शिवलीलार्णव में कहा है — "जिस प्रकार बालू में पड़ा पानी वहीं सूख जाता है, उसीप्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँचकर सूख जाता है, किन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है, कि वह सुगन्धयुक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँचकर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है ।[3] इसीलिए 'सुभाषितों का रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।'[4] अमृतरस छलकाती ये सूक्तियाँ अन्तस्तल

---

1 अपूर्वाह्लाद दायिन्य: उच्चैस्तर पदाश्रया: ।
अतिमोहापहारिण्य: सूक्तयो हि महियसाम् ॥
योगवाशिष्ठ 545

2 प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।
सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्ति प्रवर्तते ॥
ज्ञानार्णव

3 कर्णगतं शुष्यति कर्ण एव, संगीतकं सैकत वारिरीत्या ।
आनन्दयत्यन्तरनुप्रविष्य, सूक्ति कवे रेव सुधा सगन्धा ॥ — शिवलीलार्णव

4 नूनं सुभाषित रसोन्य: रसातिशायी — योग वाशिष्ठ 545

को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है। वस्तुतः जीवन को सुरभित व सुशोभित करनेवाला सुभाषित एक अनमोल रत्न है।

सुभाषित में जो माधुर्य रस होता है, उसका वर्णन करते हुए कहा है – "सुभाषित का रस इतना मधुर [मीठा] है कि उसके आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई। मिश्री सूखकर पत्थर जैसी किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग में चली गई।" [1]

अभिधान राजेन्द्र कोष की ये सूक्तियाँ अनुभव के 'सार' जैसी, समुद्र-मन्थन के 'अमृत' जैसी, दधि-मन्थन के 'मक्खन' जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक 'साक्षात्कार' जैसी "देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर" की उक्ति को चरितार्थ करती हैं। इनका प्रभाव गहन हैं। ये अन्तर ज्योति जगाती हैं।

वास्तव में, अभिधान राजेन्द्र कोष एक ऐसी अमरकृति है, जो देश-विदेश में लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है। यह एक ऐसा विराट् शब्द-कोष है, जिसमें परम मधुर अर्धमागधी भाषा, इक्षुरस के समान पुष्टिकारक प्राकृतभाषा और अमृतवर्षिणी संस्कृत भाषा के शब्दों का सरस व सरल निरुपण हुआ है।

विश्वपूज्य परमाराध्यपाद मंगलमूर्ति गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराजा साहेब पुरातन ऋषि परम्परा के महामुनीश्वर थे, जिनका तपोबल एवं ज्ञान-साधना अनुपम, अद्वितीय थी। इस प्रज्ञामहर्षि ने सन् 1890 में इस कोष का श्रीगणेश किया तथा सात भागों में 14 वर्षों तक अपूर्व स्वाध्याय, चिन्तन एवं साधना से सन् 1903 में परिपूर्ण किया। लोक-मङ्गल का यह कोष सुधा-सिन्धु है।

इस कोष में सूक्तियों का निरुपण-कौशल पण्डितों, दार्शनिकों और साधारण जनता-जनार्दन के लिए समान उपयोगी है।

इस कोष की महनीयता को दर्शाना सूर्य को दीपक दिखाना है।

हमने अभिधान राजेन्द्र कोष की लगभग 2700 सूक्तियों का हिन्दी सरलार्थ प्रस्तुत कृति 'सूक्ति सुधारस' के सात खण्डों में किया है।

'सूक्ति सुधारस' अर्थात् अभिधान राजेन्द्र-कोष-सिन्धु के मन्थन से निःसृत अमृत-रस से गूँथा गया शाश्वत सत्य का वह भव्य गुलदस्ता है, जिसमें 2667 सुकथनों/सूक्तियों की मुस्कराती कलियाँ खिली हुई हैं।

ऐसे विशाल और विराट् कोष-सिन्धु की सूक्ति रूपी मणि-रत्नों को

---

1 द्राक्षाम्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता,
सुभाषित रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता ॥

खोजना कुशल गोताखोर से सम्भव है। हम निपट अज्ञानी हैं — न तो साहित्य-विभूषा को जानती हैं, न दर्शन की गरिमा को समझती हैं और न व्याकरण की बारीकी समझती हैं, फिर भी हमने इस कोष के सात भागों की सूक्तियों को सात खण्डों में व्याख्यायित करने की बालचेष्टा की है। यह भी विश्वपूज्य के प्रति हमारी अखण्ड भक्ति के कारण।

हमारा बाल प्रयास केवल ऐसा ही है —

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशाङ्ककान्तान् ।
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं ।
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

हमने अपनी भुजाओं से कोष रूपी विशाल समुद्र को तैरने का प्रयास केवल विश्व-विभु परम कृपालु गुरुदेवश्री के प्रति हमारी अखण्ड श्रद्धा और प.पू. परमाराध्यपाद प्रशान्तमूर्ति कविरत्न आचार्य देवेश श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. तत्पट्टालंकार प. पूज्यपाद साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराजा साहेब की अमीमकृपा तथा परम पूज्या परमोपकारिणी गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी म.सा. एवं परम पूज्या सरलस्वभाविनी स्नेह-वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. [हमारी सांसारिक पूज्या दादीजी] की प्रीति से किया है। जो कुछ भी इसमें है, वह इन्हीं पञ्चमूर्ति का प्रसाद है।

हम प्रणत हैं उन पंचमूर्ति के चरण कमलों में, जिनके स्नेह-वात्सल्य व आशीर्वचन से प्रस्तुत ग्रन्थ साकार हो सका है।

हमारी जीवन-क्यारी को सदा सींचनेवाली परम श्रद्धेया [हमारी संसारपक्षीय दादीजी] पूज्यवर्या श्री के अनन्य उपकारों को शब्दों के दायरे में बाँधने में हम असमर्थ हैं। उनके द्वारा प्राप्त अमित वात्सल्य व सहयोग से ही हमें सतत ज्ञान-ध्यान, पठन-पाठन, लेखन व स्वाध्यायादि करने में हरतरह की सुविधा रही है। आपके इन अनन्त उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं।

हमारे पास इन गुरुजनों के प्रति आभार-प्रदर्शन करने के लिए न तो शब्द है, न कौशल है, न कला है और न ही अलंकार ! फिर भी हम इनकी करुणा, कृपा और वात्सल्य का अमृतपान कर प्रस्तुत ग्रंथ के आलेखन में सक्षम बन सकी हैं।

हम उनके पद-पद्मों में अनन्यभावेन समर्पित हैं, नतमस्तक हैं।

इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और मौलिक है, उस गुरु-सत्ता के शुभाशीष का ही यह शुभ फल है।

विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि महोत्सव के उपलक्ष्य में अभिधान राजेन्द्र कोष के सुगन्धित सुमनों से श्रद्धा-भक्ति के स्वर्णिम धागे से गूंथी यह षष्ठम सुमनमाला उन्हें पहना रही हैं, विश्वपूज्य प्रभु हमारी इस नन्हीं माला को स्वीकार करें।

हमें विश्वास है यह श्रद्धा-भक्ति-सुमन जन-जीवन को धर्म, नीति-दर्शन-ज्ञान-आचार, राष्ट्रधर्म, आरोग्य, उपदेश, विनय-विवेक, नम्रता, तप-संयम, सन्तोष-सदाचार, क्षमा, दया, करुणा, अहिंसा-सत्य आदि की सौरभ से महकाता रहेगा और हमारे तथा जन-जन के आस्था के केन्द्र विश्वपूज्य की यशः सुरभि समस्त जगत् में फैलाता रहेगा।

इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि हर मानव कृति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं। इसीलिए लेनिन ने ठीक ही कहा है : **त्रुटियाँ तो केवल उसी से नहीं होगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं।**

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.
डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.

आभार

हम परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा "मधुकर", परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी म सा. एवं प. पू. मुनिप्रवर श्री जयानन्द विजयजी म. सा के चरण कमलों में वंदना करती हैं, जिन्होंने असीम कृपा करके अपने मन्तव्य लिखकर हमें अनुगृहीत किया है। हमें उनकी शुभप्रेरणा व शुभाशीष सदा मिलती रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है।

इसके साथ ही हमारी सुविनीत गुरुबहनें सुसाध्वीजी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी श्रीसम्यग्दर्शनाश्रीजी (सांसारिक सहोदरबहनें), श्री चारूदर्शनाश्रीजी एवं श्री प्रीतिदर्शनाश्रीजी (एम.ए) की शुभकामना का सम्बन्ध भी इस ग्रन्थ के प्रणयन में साथ रहा है। अत: उनके प्रति भी हृदय से आभारी हैं।

हम पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत ब्रिटेन, विश्वविख्यात विधिवेत्ता एवं महान् साहित्यकार माननीय डॉ श्रीमान् लक्ष्मीमल्लजी सिंघवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं, जिन्होंने अति भव्य मन्तव्य लिखकर हमें प्रेरित किया है। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

इस अवसर पर हिन्दी-अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी सरलमना माननीय डो. श्री जवाहरचन्द्रजी पटनी का योगदान भी जीवन में कभी नहीं भुलाया जा सकता है। पिछले दो वर्षों से सतत उनकी यही प्रेरणा रही कि आप शीघ्रातिशीघ्र 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'अभिधान राजेन्द्र कोष में जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम' और 'विश्वपूज्य' (श्रीमद राजेन्द्रसूरि: जीवन-सौरभ) आदि ग्रन्थों को सम्पन्न करें। उनकी सक्रिय प्रेरणा, सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन व आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सुझाव के कारण ही ये ग्रन्थ [1 से 10 खण्ड] यथासमय पूर्ण हो सके हैं। पटनी सा() ने अपने अमूल्य क्षणों का सदुपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन में किया। हमने यह अनुभव किया कि देहयष्टि वार्धक्य के कारण कृश होती है, परन्तु आत्मा अजर अमर है। गीता में कहा है :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक: ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुत: ॥
कर्मयोगी का यही अमर स्वरूप है ।

हम साध्वीद्वय उनके प्रति हृदय से कृतज्ञा हैं। इतना ही नहीं, अपितु प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप अपना आमुख लिखने का कष्ट किया तदर्थ भी हम आभारी हैं।

उनके इस प्रयास के लिए हम धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापन कर उनके अमूल्य श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहतीं। बस, इतना ही कहेंगी कि इस सम्पूर्ण कार्य के निमित्त उन्हें ज्ञान के इस अथाह सागर में बार-बार डुबकियाँ लगाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ, वह उनके लिए महान् सौभाग्य है।

तत्पश्चात् अनवरत शिक्षा के क्षेत्र में सफल मार्गदर्शन देनेवाले शिक्षा गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा परम कर्तव्य है। बी. ए. [प्रथम खण्ड] से लेकर आजतक हमारे शोध निर्देशक माननीय डॉ. श्री अखिलेशकुमारजी राय सा. द्वारा सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन एवं निरन्तर प्रेरणा को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके परिणाम स्वरूप अध्ययन के क्षेत्र में हम प्रगतिपथ पर अग्रसर हुईं। इसी कड़ी में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसी के निदेशक माननीय डॉ. श्री सागरमलजी जैन के द्वारा प्राप्त सहयोग को भी जीवन में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि पार्श्वनाथ विद्याश्रम के परिसर में सालभर रहकर हम साध्वी द्वय ने 'आचारांग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन' और 'आनन्दघन का रहस्यवाद' — इन दोनों शोध-प्रबन्ध-ग्रन्थों को पूर्ण किया था, जो पीएच.डी. की उपाधि के लिए अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र) ने स्वीकृत किये। इन दोनों शोध-प्रबन्ध ग्रन्थों को पूर्ण करने में डॉ. जैन सा. का अमूल्य योगदान रहा है। इतना ही नहीं, प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप मन्तव्य लिखने का कष्ट किया। तदर्थ भी हम आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त विश्रुत पण्डितवर्य माननीय श्रीमान् दलसुख भाई मालवणियाजी, विद्वद्वर्य डॉ. श्री नेमीचन्दजी जैन, शास्त्रसिद्धान्त रहस्यविद् ? पण्डितवर्य श्री गोविन्दरामजी व्यास, विद्वद्वर्य पं. श्री जयनन्दनजी झा, पण्डितवर्य श्री हीरालालजी शास्त्री एम.ए., हिन्दी अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी श्री भागचन्दजी जैन, एवं डॉ. श्री अमृतलालजी गाँधी ने भी मन्तव्य लिखकर स्नेहपूर्ण उदारता दिखाई, तदर्थ हम उन सबके प्रति भी हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

अन्त में उन सभी का आभार मानती हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष सहकार / सहयोग मिला है।

यह कृति केवल हमारी बालचेष्टा है, अतः सुविज्ञ, उदारमना सज्जन हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा करें।

पौष शुक्ला सप्तमी — *डॉ. प्रियदर्शनाश्री*

5 जनवरी, 1998 — *डॉ. सुदर्शनाश्री*

7

मुद्रण सहयोगी

श्रुतज्ञानप्रेमी, धर्मानुरागी

सकल श्रीसंघ, धाणसा !

धन्यवाद का पात्र है श्रीसंघ जिन्होंने 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति-सुधारस' (षष्ठम खण्ड) के मुद्रण का लाभ लेकर अत्यन्त ही प्रशंसनीय कार्य किया है।

पढमं नाणं तओ दया ।

- पहले ज्ञान फिर दया [आचरण] ।

यह श्रीसंघ का सर्वप्रथम लक्ष्य रहा है। श्रीसंघ की महिमा भी ज्ञानोपासना में निहित है। जैनधर्म के सप्तक्षेत्रों में जिनबिम्ब, जिनालय, जिनागम साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविका के पोषण का प्रभुने आदेश दिया है।

श्रीसंघ, जिनशासन रूपी स्वर्ण-रजत-रत्नमय सुरथ के चक्रतुल्य है।

कुमारपाल प्रतिबोध में कहा है -

'अणुदियहं दितस्सवि झिज्झन्ति न सायरस्स रयणाइं' ।

- प्रतिदिन देते हुए भी सागर के रत्न कभी समाप्त नहीं होते ।

आवश्यक निर्युक्ति में कहा है -

नाणं पयासगं ।

ज्ञान प्रकाश करनेवाला है। ज्ञान से ही विवेक जगता है। उपाध्याय यशोविजयजी म. ने कहा है -

'ज्ञान' समुद्र मन्थन के बिना प्रादुर्भूत अमृत है, बिना औषधि का रसायन है और किसी की अपेक्षा नहीं रखनेवाला ऐश्वर्य है।

बृहत्कल्प भाष्य में तो **'सूयं तइयं चक्खु'**-अर्थात् श्रुतज्ञान को तीसरा नेत्र बताया है। इतना ही नहीं, सूक्तमुक्तावली में कहा है-ज्ञान दुनिया की आँख है। इस संसार में ज्ञान से बढ़कर अन्य कोई पवित्र वस्तु नहीं है।

श्री संघ धाणसा को इस सुकृत के लिए हमारी जीवन-निर्मात्री परम पूजनीया साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. (पू. दादीजी म. सा.) आशीर्वाद प्रदान करती हैं। साथ ही हमारी ओर से आभार और धन्यवाद।

हम आशा करती हैं कि श्रीसंघ, धाणसा इसीप्रकार भविष्य में भी सुकृत्यों में सदा सहयोग देता रहेगा। यही अभ्यर्थना !

- साध्वी डॉ. प्रियदर्शना श्री

- साध्वी डॉ. सुदर्शना श्री

8

अनुभूति

– डॉ. जवाहरचन्द्र पटनी,

एम. ए. (हिन्दी-अंग्रेजी), पीएच. डी., बी.टी.

विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी विरले सन्त थे । उनके जीवन-दर्शन से यह ज्ञात होता है कि वे लोक मंगल के क्षीर-सागर थे । उनके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति तब विशेष बढ़ी, जब मैंने कलिकाल कल्पतरू श्री वल्लभसूरिजी पर 'कलिकाल कल्पतरू' महाग्रन्थ का प्रणयन किया, जो पीएच. डी. उपाधि के लिए जोधपुर विश्वविद्यालय ने स्वीकृत किया । विश्वपूज्य प्रणीत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' से मुझे बहुत सहायता मिली । उनके पुनीत पद-पद्मों में कोटिशः वन्दन !

फिर पूज्या डॉ. साध्वी द्वय श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. के ग्रन्थ – 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'विश्वपूज्य' [श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम', 'सुगन्धित सुमन', 'जीवन की मुस्कान' एवं 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' आदि ग्रन्थों का अवलोकन किया । विदुषी साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य की तपश्चर्या, कर्मठता एवं कोमलता का जो वर्णन किया है, उससे मैं अभिभूत हो गया और मेरे सम्मुख इस भोगवादी आधुनिक युग में पुरातन ऋषि-महर्षि का विराट् और विनम्र करुणार्द्र तथा सरल, लोक-मंगल का साक्षात् रूप दिखाई दिया ।

श्री विश्वपूज्य इतने दृढ़ थे कि भयंकर झंझावातों और संघर्षों में भी अडिग रहे । सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के परमपुनीत स्मरण से वे अपनी नन्हीं देह-किश्ती को उफनते समुद्र में निर्भय चलाते रहें । स्मरण हो आता है, परम गीतार्थ महान् आचार्य मानतुंगसूरिजी रचित महाकाव्य भक्तामर का यह अमर श्लोक –

'अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र,
पाठीन पीठ भय दोल्बण वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरंग शिखर स्थित यान पात्रा –
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥'

हे स्वामिन् ! क्षुब्ध बने हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और पाठीन तथा पीठ जाति के मत्स्य व भयंकर वड़वानल अग्नि जिसमें है, ऐसे समुद्र में जिनके जहाज लहरों के अग्रभाग पर स्थित हैं; ऐसे जहाजवाले लोग आपका मात्र स्मरण करने से ही भयरहित होकर निर्विघ्नरूप से इच्छित स्थान पर पहुँचते हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य के विराट् और कोमल जीवन का यथार्थ वर्णन किया है । उससे यह सहज प्रतीति होती है कि विश्वपूज्य कर्मयोगी महर्षि थे, जिन्होंने उस युग में व्याप्त भ्रष्टाचार और आडम्बर को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, वन-उपवन में पैदल विहार किया । व्यसनमुक्त समाज के निर्माण में अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया ।

विदुषी लेखिकाओंने यह बताया है कि इस महर्षि ने व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत करने हेतु सदाचार-सुचरित्र पर बल दिया तथा सत्साहित्य द्वारा भारतीय गौरवशालिनी संस्कृति को अपनाने के लिए अभिप्रेरित किया ।

इस महर्षि ने हिन्दी में भक्तिरस-पूर्ण स्तवन, पद एवं सज्झायादि गीत लिखे हैं । जो सर्वजनहिताय, स्वान्तः सुखाय और भक्तिरस प्रधान हैं । इनकी समस्त कृतियाँ लोकमंगल की अमृत गगरियाँ हैं ।

गीतों में शास्त्रीय संगीत एवं पूजा-गीतों की लावणियाँ हैं जिनमें माधुर्य भरपूर हैं । विश्वपूज्य ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं दृष्टान्त आदि अलंकारों का अपने काव्य में प्रयोग किया है, जो अप्रयास है । ऐसा लगता है कि कविता उनकी हृदय वीणा पर सहज ही झंकृत होती थी । उन्होंने यद्यपि स्वान्तः सुखाय गीत रचना की है, परन्तु इनमें लोकमाङ्गल्य का अमृत स्रवित होता है ।

उनके तपोमय जीवन में प्रेम और वात्सल्य की अमी-वृष्टि होती है ।

विश्वपूज्य अर्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं के अद्वितीय महापण्डित थे । उनकी अमरकृति – 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में इन तीन भाषाओं के शब्दों की सारगर्भित और वैज्ञानिक व्याख्याएँ हैं । यह केवल पण्डितवरों का ही चिन्तामणि रत्न नहीं है, अपितु जनसाधारण को भी इस अमृत-सरोवर का अमृत-पान करके परम तृप्ति का अनुभव होता है । उदाहरण के लिए – जैनधर्म में 'नीवि' और 'गहुँली' शब्द प्रचलित हैं । इन शब्दों की व्याख्या मुझे कहीं भी नहीं मिली । इन शब्दों का समाधान इस कोष में है । 'नीवि' अर्थात् नियमपालन करते हुए विधिपूर्वक आहार लेना । गहुँली गुरु-भगवंतों के शुभागमन पर मार्ग में अक्षत का स्वस्तिक करके उनकी वधामणी करते हैं और गुरुवर के प्रवचन के पश्चात् गीत द्वारा गहुँली गीत गाया जाता है । इनकी

व्युत्पत्ति-व्याख्या 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में मिलीं । पुरातनकाल में गेहूँ का स्वस्तिक करके गुरुजनों का सत्कार किया जाता था । कालान्तर में अक्षत-चावल का प्रचलन हो गया । यह शब्द योगरूढ़ हो गया, इसलिए गुरु भगवंतों के सम्मान में गाया जानेवाला गीत भी गहुँली हो गया । स्वर्ण मोहरों या रत्नों से गहुँली क्यों न हो, वह गहुँली ही कही जाती है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से अनेक शब्द जिनवाणी की गंगोत्री में लुढ़क-लुढ़क कर, घिस-घिस कर शालिग्राम बन जाते हैं । विश्वपूज्य ने प्रत्येक शब्द के उद्‌गम-स्रोत की गहन व्याख्या की है । अतः यह कोष वैज्ञानिक है, साहित्यकारों एवं कवियों के लिए रसात्मक है तथा जनसाधारण के लिए शिव-प्रसाद है ।

जब कोष की बात आती है तो हमारा मस्तक हिमगिरि के समान विराट् गुरुवर के चरण-कमलों में श्रद्धावनत हो जाता है । षष्टिपूर्ति के तीन वर्ष बाद 63 वर्ष की वृद्धावस्था में विश्वपूज्य ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' का श्रीगणेश किया और 14 वर्ष के अनवरत परिश्रम व लगन से 76 वर्ष की आयु में इसे परिसम्पन्न किया ।

इनके इस महत्दान का मूल्याङ्कन करते हुए मुझे महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा का स्मरण हो आता है, जिसमें इन्द्र ने देवासुर संग्राम में देवों की हार और असुरों की जय से निराश होकर इस महर्षि से अस्थिदान की प्रार्थना की थी । सत् विजयाकांक्षा की मंगल-भावना से इस महर्षि ने अनशन तप से देह सुखाकर अस्थिदान इन्द्र को दिया था, जिससे वज्रायुध बना । इन्द्र ने वज्रायुध से असुरों को पराजित किया । इसप्रकार सत् की विजय और असत् की पराजय हुई । 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष हुआ ।

सचमुच यह कोष वज्रायुध के समान सत्य की रक्षा करनेवाला और असत्य का विध्वंस करनेवाला है ।

विदुषी साध्वी द्वय ने इस महाग्रन्थ का मन्थन करके जो अमृत प्राप्त किया है, वह जनता-जनार्दन को समर्पित कर दिया है ।

सारांश में - यह ग्रन्थ 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' की परमोज्ज्वल ज्योति सब युगों में जगमगाता रहेगा — यावत्चन्द्रदिवाकरौ ।

इस कोष की लोकप्रियता इतनी है कि साण्डेराव ग्राम (जिला-पाली-राजस्थान) के लघु पुस्तकालय में भी इसके नवीन संस्करण के सातों भाग विद्यमान हैं । यही नहीं, भारत के समस्त विश्वविद्यालयों, श्रेष्ठ महाविद्यालयों तथा पाश्चात्य देशों के विद्या-संस्थानों में ये उपलब्ध हैं । इनके बिना विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान रिक्त लगते हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय निःसंदेह यशोपात्रा हैं, क्योंकि उन्होंने विश्वपूज्य के पाण्डित्य को ही अपने ग्रन्थों में नहीं दर्शाया है; अपितु इनके लोक-माङ्गल्य का भी प्रशस्त वर्णन किया है ।

ये महान् कर्मयोगी पत्थरों में फूल खिलाते हुए, मरूभूमि में गंगा-जमुना की पावन धाराएँ प्रवाहित करते हुए, बिखरे हुए समाज को कलह के काँटों से बाहर निकाल कर प्रेम-सूत्र में बाँधते हुए, पीड़ित प्राणियों की वेदना मिटाते हुए, पर्यावरण - शुद्धि के लिए आत्म-जागृति का पाञ्चजन्य शंख बजाते हुए ८0 वर्ष की आयु में प्रभु शरण में कल्पपुष्प के समान समर्पित हो गए ।

श्री वाल्मीकि ने रामायण में यह बताया है कि भगवान् राम ने १४ वर्षों के वनवास काल में अछूतों का उद्धार किया, दुःखी-पीड़ित प्राणियों को जीवन-दान दिया, असुर प्रवृत्ति का नाश किया और प्राणि-मैत्री की रसवन्ती गंगधारा प्रवाहित की । इस कालजयी युगवीर आचार्य ने इसीलिए १४ वर्ष कोष की रचना में लगाये होंगे । १४ वर्ष शुभ काल है — मंगल विधायक है । महर्षियों के रहस्य को महर्षि ही जानते हैं ।

लाखों-करोड़ों मनुष्यों का प्रकाश-दीप बुझ गया, परन्तु वह बुझा नहीं है । वह समस्त जगत् के जन-मानसों में करूणा और प्रेम के रूप में प्रदीप्त हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय के ग्रन्थों को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि विश्वपूज्य केवल त्रिस्तुतिक आम्नाय के ही जैनाचार्य नहीं थे, अपितु समस्त जैन समाज के गौरव किरीट थे, वे हिन्दुओं के सन्त थे, मुसलमानों के फकीर और ईसाइयों के पादरी । वे जगद्गुरु थे । विश्वपूज्य थे और हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय की भाषा-शैली वसन्त की परिमल के समान मनोहारिणी है । भावों को कल्पना और अलंकारों से इक्षुरस के समान मधुर बना दिया है । समरसता ऐसी है जैसे — सुरसरि का प्रवाह ।

दर्शन की गम्भीरता भी सहज और सरल भाषा-शैली से सरस बन गयी है ।

इन विदुषी साध्वियों के मंगल-प्रसाद से समाज सुसंस्कारों के प्रशस्त-पथ पर अग्रसर होगा । भविष्य में भी ये साध्वियाँ तृष्णा तृषित आधुनिक युग को अपने जीवन-दर्शन एवं सत्साहित्य के सुगन्धित सुमनों से महकाती रहेंगी ! यही शुभेच्छा !

पूज्या साध्वीजी द्वय को विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की पावन प्रेरणा प्राप्त हुई, इससे इन्होंने इन अभिनव ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

यह सच है कि रवि-रश्मियों के प्रताप से सरोवर में सरोज सहज ही प्रस्फुटित होते हैं। वासन्ती पवन के हलके से स्पर्श से सुमन सौरभ सहज ही प्रसृत होते हैं। ऐसी ही विश्वपूज्य के वात्सल्य की परिमल इनके ग्रन्थों को सुरभित कर रही हैं। उनकी कृपा इनके ग्रन्थों की आत्मा है।

जिन्हें महाज्ञानी साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त प. पू. आचार्यदेवेश श्रीमद्जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा. का आर्शीवाद और परम पूज्या जीवन निर्मात्री (सांसारिक दादीजी) साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. का अमित वात्सल्य प्राप्त हों, उनके लिए ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन सहज और सुगम क्यों न होगा ? निश्चय ही।

वात्सल्य भाव से मुझे आमुख लिखने का आदेश दिया पूज्या साध्वी द्वय ने। उसके लिए आभारी हूँ, यद्यपि मैं इसके योग्य किञ्चित् भी नहीं हूँ। इति शुभम् !

पौष शुक्ला सप्तमी
5 जनवरी, 1998
कालन्द्री
जिला-सिरोही (राज.)

पूर्वप्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज,
फालना (राज.)

९

मन्तव्य

— ड्रॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

(पद्म विभूपण, पूर्व भारतीय राजदूत-ब्रिटेन)

आदरणीया डॉ. प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. सुदर्शनाजी साध्वीद्वय ने "विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ)', "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्तिमुधारस" (1 से 7 खण्ड), एवं अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" की रचना में जैन परम्परा की यशोगाथा की अमृतमय प्रशस्ति की है। ये ग्रंथ विदुषी साध्वी-द्वय की श्रद्धा, निष्ठा, शोध एवं दृष्टि-सम्पन्नता के परिचायक एवं प्रमाण हैं। एक प्रकार मे इस ग्रंथत्रयी में जैन-परम्परा की आधारभूत रत्नत्रयी का प्रोज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। युगपुरुप, प्रज्ञामहर्पि, मनीपी आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रमूरिजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विराट् क्षितिज और धरातल की विहंगम छवि प्रस्तुत करते हुए साध्वी-द्वय ने इतिहास के एक शलाकापुरुप की यश-प्रतिमा की मंरचना की है, उनकी अप्रतिम उपलब्धियों के ज्योतिर्मय अध्याय को प्रदीप्त और रेखांकित किया है। इन ग्रंथों की शैली मार्हित्यक है, विवेचन विश्लेषणात्मक है, मंप्रेषण रम-मम्पन्न एवं मनोहारी है और रेखांकन कलात्मक है।

पुण्य श्लोक प्रात:म्मरणीय आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रमूरिजी अपने जन्म के नाम के अनुमार ही वाम्तव में 'रत्नराज' थे। अपने ममय में वे जैनपरम्परा में ही नहीं बल्कि भारतीय विद्या के विश्रुत विद्वान् एवं विद्वना के शिरोमणि थे। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में मागर की गहराइ और पर्वत की ऊँचाइ विद्यमान थी। इमीलिए उनको विश्वपूज्य के अलंकरण मे विभूपित करते हुए वह अलंकरण ही अलंकृत हुआ। भारतीय वाङ्मय में "अभिधान राजेन्द्र कोष" एक अद्वितीय, विलक्षण और विराट् कीर्तिमान है जिसमें संम्कृत, प्राकृत एवं अर्धमागधी की त्रिवेणी भापाओं और उन भापाओं में प्राप्त विविध परम्पराओं की सूक्तियों की सरल और सांगोपांग व्याख्याएँ हैं, शब्दों का विवेचन और दार्शनिक संदर्भों की अक्षय सम्पदा है। लगभग ६० हजार शब्दों की व्याख्याओं एवं साढ़े चार लाख श्लोकों के ऐश्वर्य से महिमामंडित यह ग्रंथ जैन परम्परा एवं समग्र भारतीय विद्या का अपूर्व भंडार है। साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्री एवं डॉ. सुदर्शनाश्री की यह प्रस्तुति एक ऐसा साहसिक सारस्वत

प्रयास है जिसकी सराहना और प्रशस्ति में जितना कहा जाय वह स्वल्प ही होगा, अपर्याप्त ही माना जायगा। उनके पूर्वप्रकाशित ग्रंथ "आनंदघन का रहस्यवाद" एवं आचारांग सूत्र का नीतिशास्त्रीय अध्ययन" प्रत्यूष की तरह इन विदुषी साध्वियों की प्रतिभा की पूर्व सूचना दे रहे थे। विश्व पूज्य की अमर स्मृति में साधना के ये नव दिव्य पुष्प अरुणोदय की रश्मियों की तरह हैं।

24-4-1998
4F, White House,
10, Bhagwandas Road,
New Delhi-110001

10

'दो शब्द'

— *पं. दलसुख मालवणिया*

पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साध्वीद्वयने "अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" एवं "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड), आदि ग्रन्थ लिखकर तैयार किए हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गौरवमयी रचनाएँ हैं। उनका यह अथक प्रयास स्तुत्य है। साध्वीद्वय का यह कार्य उपयोगी तो है ही, तदुपरान्त जिज्ञासुजनों के लिए भी उपकारक हो, वैसा है।

इसप्रकार जैनदर्शन की सरल और संक्षिप्त जानकारी अन्यत्र दुर्लभ है। जिज्ञासु पाठकों को जैनधर्म के सद् आचार-विचार, तप-संयम, विनय-विवेक विषयक आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाय वैसी कृतियाँ हैं।

पूज्या साध्वीद्वय द्वारा लिखित इन कृतियों के माध्यम से मानव-समाज को जैनधर्म-दर्शन सम्बन्धी एक दिशा, एक नई चेतना प्राप्त होगी।

ऐसे उत्तम कार्य के लिए साध्वीद्वय का जितना उपकार माना जाय, वह स्वल्प ही होगा।

दिनांक : **30-4-98**

माधुरी-8,
आपेरा सोसायटी, पालड़ी,
अहमदाबाद-380007

सूक्ति-सुधारस मेरी दृष्टि में

— *डॉ. नेमीचन्द जैन*
संपादक "तीर्थंकर"

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' के एक से सात खण्ड तक में, मैं गोते लगा सका हूँ। आनन्दित हूँ। रस-विभोर हूँ। कवि बिहारी के दोहे की एक पंक्ति बार-बार आँखों के सामने आ-जा रही है : "बूड़े अनबूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग"। जो डूबे नहीं, वे डूब गये हैं और जो डूब सके हैं सिर-से-पैर तक वे तिर गये हैं। अध्यात्म, विशेषत: श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी के 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का यही आलम है। डूबिये, तिर जाएँगे; सतह पर रहिये, डूब जाएँगे।

वस्तुत: 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का एक-एक वर्ण बहुमुखीता का धनी है। यह अप्रतिम कृति 'विश्वपूज्य' का 'विश्वकोश' (एन्सायक्लोपीडिया) है। जैसे-जैसे हम इसके तलातल का आलोड़न करते हैं, वैसे-वैसे जीवन की दिव्य छबियाँ थिरकती-ठुमकती हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। हमारा जीवन सर्वोत्तम से संवाद बनने लगता है।

'अभिधान राजेन्द्र' में संयोगत: सम्मिलित सूक्तियाँ ऐसी सूक्तियाँ हैं, जिनमें श्रीमद् की मनीषा-स्वाति ने दुर्लभ/दीप्तिमन्त मुक्ताओं को जन्म दिया है। ये सूक्तियाँ लोक-जीवन को माँजने और उसे स्वच्छ-स्वस्थ दिशा-दृष्टि देने में अद्वितीय हैं। मुझे विश्वास है कि साध्वीद्वय का यह प्रथम पुरुषार्थ उन तमाम सूक्तियों को, जो 'अभिधान राजेन्द्र' में प्रसंगत: समाविष्ट हैं, प्रस्तुत करने में सफल होगा। मेरे विनम्र मत में यदि इनमें-से कुछेक सूक्तियों का मन्दिरों, देवालयों, स्वाध्याय-कक्षों, स्कूल-कॉलेजों की भित्तियों पर अंकन होता है तो इससे हमारी धार्मिक असंगतियों को तो एक निर्मल कायाकल्प मिलेगा ही, राष्ट्रीय चरित्र को भी नैतिक उत्थान मिलेगा। मैं न सिर्फ २६६७ सूक्तियों के ७ बृहत् खण्डों की प्रतीक्षा करूँगा, अपितु चाहूँगा कि इन सप्त सिन्धुओं के सावधान परिमन्थन से कोई 'राजेन्द्र सूक्ति नवनीत' जैसी लघुपुस्तिका सूरज की पहली किरण देखे। ताकि संतप्त मानवता के घावों पर चन्दन-लेप संभव हो।

27-04-1998

65, पत्रकार कालोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर (म.प्र.)-452001

12

वक्तव्य

— डॉ. सागरमल जैन

पूर्व निर्देशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) नामक इस कृति का प्रणयन पूज्या साध्वीश्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने किया है। वस्तुतः यह कृति अभिधानराजेन्द्रकोष में आई हुई महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का अनूठा आलेखन है। लगभग एक शताब्दि पूर्व ईस्वीसन् १८९० आश्विन शुक्ला दूज के दिन शुभ लग्न में इस कोष ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ हुआ और पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के अथक प्रयासों से लगभग १४ वर्ष में यह पूर्ण हुआ फिर इसके प्रकाशन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो पुनः १७ वर्षों में पूर्ण हुई। जैनधर्म सम्बन्धी विश्वकोषों में यह कोष ग्रन्थ आज भी सर्वोपरि स्थान रखता है। प्रस्तुत कोष में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शब्दों का अकारादि क्रम से विस्तारपूर्वक विवेचन उपलब्ध होता है। इस विवेचना में लगभग शताधिक ग्रन्थों से सन्दर्भ चुने गये हैं। प्रस्तुत कृति में साध्वी-द्वय ने इसी कोषग्रन्थ को आधार बनाकर सूक्तियों का आलेखन किया हैं। उन्होंने अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक खण्ड को आधार मानकर इस 'सूक्ति-सुधारस' को भी सात खण्डों में ही विभाजित किया हैं। इसके प्रथम खण्ड में अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग से सूक्तियों का आलेखन किया है। यही क्रम आगे के खण्डों में भी अपनाया गया हैं। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड का आधार अभिधान राजेन्द्र कोष का प्रत्येक भाग ही रहा हैं। अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर सूक्तियों का संकलन करने के कारण सूक्तियों को न तो अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है और न उन्हें विषय के आधार पर ही वर्गीकृत किया गया हैं, किन्तु पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में अकारादिक्रम से एवं विषयानुक्रम से शब्द-सूचियाँ दे दी गई हैं, इससे जो पाठक अकारादि क्रम से अथवा विषयानुक्रम से इन्हें जानना चाहे उन्हें भी सुविधा हो सकेगी। इन परिशिष्टों के माध्यम से प्रस्तुत कृति अकारादिक्रम अथवा विषयानुक्रम की कमी की पूर्ति कर देती है। प्रस्तुतकृति में प्रत्येक

सूक्ति के अन्त में अभिधान राजेन्द्र कोष के सन्दर्भ के साथ-साथ उस मूल ग्रन्थ का भी सन्दर्भ दे दिया गया है, जिससे ये सूक्तियाँ अभिधान राजेन्द्र कोष में अवतरित की गई। मूलग्रन्थों के सन्दर्भ होने से यह कृति शोध-छात्रों के लिए भी उपयोगी बन गई हैं।

वस्तुतः सूक्तियाँ अतिसंक्षेप में हमारे आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन मूल्योंको उजागर कर व्यक्ति को सम्यक्‌जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। अतः ये सूक्तियाँ जन साधारण और विद्वत् वर्ग सभी के लिए उपयोगी हैं। आबाल-वृद्ध उनसे लाभ उठा सकते हैं। साध्वीद्वय ने परिश्रमपूर्वक जो इन सूक्तियों का संकलन किया है वह अभिधान राजेन्द्र कोष रूपी महासागर से रत्नों के चयन के जैसा हैं। प्रस्तुत कृति में प्रत्येक सूक्ति के अन्त में उसका हिन्दी भाषा में अर्थ भी दे दिया गया है, जिसके कारण प्राकृत और संस्कृत से अनभिज्ञ सामान्य व्यक्ति भी इस कृति का लाभ उठा सकता हैं। इन सूक्तियों के आलेखन में लेखिका-द्वय ने न केवल जैनग्रन्थों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन/संयोजन किया है, अपितु वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की भी अभिधान राजेन्द्र कोष में गृहीत सूक्तियों का संकलन कर अपनी उदारहृदयता का परिचय दिया है। निश्चय ही इस महनीय श्रम के लिए साध्वी-द्वय-पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साधुवाद की पात्रा हैं। अन्त में मैं यही आशा करता हूँ कि जन सामान्य इस 'सूक्ति-सुधारस' में अवगाहन कर इसमें उपलब्ध सुधारस का आस्वादन करता हुआ अपने जीवन को सफल करेगा और इसी रूप में साध्वी द्वय का यह श्रम भी सफल होगा।

दिनांक 31-6-1998
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी (उ.प्र.)

13

विद्याव्रती

शास्त्र सिद्धान्त रहस्य विद् ?

— पं. गोविन्दराम व्यास

उक्तियाँ और सूक्त-सूक्तियाँ वाङ्मय वारिधि की विवेक वीचियाँ हैं। विद्या संस्कार विमर्शिता विगत की विवेचनाएँ हैं । विवर्द्धित-वाङ्मय की वैभवी विचारणाएँ हैं । सार्वभौम सत्य की स्तुतियाँ हैं । प्रत्येक पल की परमार्शदायिनी-पारदर्शिनी प्रज्ञा पारमिताएँ हैं । समाज, संस्कृति और साहित्य की सरसता की छवियाँ हैं । क्रान्तदर्शी कोविदों की पारदर्शिनी परिभाषाएँ हैं। मनीषियों की मनीषा की महत्त्व प्रतिपादिनी पीपासाएँ हैं । क्रूर-काल के कौतुकों में भी आयुष्मती होकर अनागत का अवबोध देती रही हैं । ऐसी सूक्तियों को सश्रद्ध नमन करता हुआ वाग्देवता का विद्या-प्रिय विप्र होकर वाङ्मयी पूजा में प्रयोगवान् बन रहा हूँ ।

श्रमण-संस्कृति की स्वाध्याय में स्वात्म-निष्ठा निराली रही है । आचार्य हरिभद्र, अभय, मलय जैसे मूर्धन्य महामतिमान्, सिद्धसेन जैसे शिरोमणि, सक्षम, श्रद्धालु जिनभद्र जैसे - क्षमाश्रमणों का जीवन वाङ्मयी वरिवस्या का विशेष अंग रहा है ।

स्वाध्याय का शोभनीय आचार अद्यावधि-हमारे यहाँ अक्षुण्ण पाया जाता है । इसीलिए स्वाध्याय एवं प्रवचन में अप्रमत्त रहने का समादश शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है ।

वस्तुत: नैतिक मूल्यों के जागरण के लिए, आध्यात्मिक चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापन के लिए आर्याप्रवरा द्वय द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' एक उपादेय महत्त्वपूर्ण गौरवमयी रचना है ।

आत्म-अभ्युदयशीला, स्वाध्याय-परायणा, सतत अनुशीलन उज्ज्वला आर्या डॉ. श्री प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाजी की शास्त्रीय-साधना सराहनीया है । इन्होंने अपने आम्नाय के आद्य-पुरुष की प्रतिभा का परिचय प्राप्त करने का प्रयास कर अपनी चारित्र-सम्पदा को वाङ्मयी साधना में समर्पिता करती

हुई 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ') का रहस्योद्घाटन किया है ।

विदुषी श्रमणी द्वय ने प्रस्तुत कृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) को कोषों के कारागारों से मुक्तकर जीवन की वाणी में विशद करने का विश्वास उपजाया है । अत: आर्या युगल, इसप्रकार की वाङ्मयी-भारती भक्ति में भूपिता रहें एवं आत्मतोष में तोपिता होकर सारस्वत इतिहास की असामान्या विदुषी बनकर वाङ्मय के प्रांगण की प्रोन्नता भूमिका निभाती रहें । यही मेरा आत्मीय अमोघ आशीर्वाद है ।

इनका विद्या-विवेकयोग, श्रुतों की समाराधना में अच्युत रहे, अपनी निरहंकारिता को अतीव निर्मला बनाता रहे और उत्तरोत्तर समुत्साह-समुन्नत होकर स्वान्त: सुख को समुल्लसित रखता रहे । यही सदाशया शोभना शुभाकांक्षा है ।

चैत्रसुदी 5 बुध
1 अप्रैल, 98
हरजी
जिला - जालोर (राज.)

14

वक्तव्य

— पं. जयनंदन झा,
व्याकरण साहित्याचार्य,
साहित्य रत्न एवं शिक्षाशास्त्री

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। वह अपने उदात्त मानवीय गुणों के कारण सारे जीवों में उत्तरोत्तर चिन्तनशील होता हुआ विकास की प्रक्रिया में अनवरत प्रवर्धमान रहा है। उसने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही जीवन का परम ध्येय माना है, पर ज्ञानीजन ने इस संसार को ही परम ध्येय न मानकर अध्यात्म ज्ञान को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। अतः जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति में धर्म, अर्थ और काम को केवल साधन मात्र माना है।

इसलिये अध्यात्म चिन्तन में भारत विश्वमंच पर अति श्रद्धा के साथ प्रशंसित रहा है। इसकी धर्म सहिष्णुता अनोखी एवं मानवमात्र के लिये अनुकरणीय रही है। यहाँ वैष्णव, जैन तथा बौद्ध धर्माचार्यों ने मिलकर धर्म की तीन पवित्र नदियों का संगम "त्रिवेणी" पवित्र तीर्थ स्थापित किया है जहाँ सारे धर्माचार्य अपने-अपने चिन्तन से सामान्य मानव को भी मिल-बैठकर धर्मचर्चा के लिये विवश कर देते हैं। इस क्षेत्र में किस धर्म का कितना योगदान रहा है, यह निर्णय करना अल्प बुद्धि साध्य नहीं है।

पर, इतना निर्विवाद है कि जैन मनीषी और सन्त अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिये आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र में तपे हुए मणि के समान सहस्र-सूर्य-किरण के कीर्तिस्तम्भ से भारतीय दर्शन को प्रोद्भासित कर रहे हैं, जो काल की सीमा से रहित है। जैनधर्म व दर्शन शाश्वत एवं चिरन्तन है, जो विविध आयामों से इसके अनेकान्तवाद को परिभाषित एवं पुष्ट कर रहे हैं। ज्ञान और तप तो इसकी अक्षय निधि है।

जैन धर्म में भी मन्दिर मार्गी-त्रिस्तुतिक परम्परा के सर्वोत्कृष्ट साधक जैनधर्माचार्य "श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. अपनी तपःसाधना और ज्ञानमीमांसा से परमपूत होने के कारण सार्वकालिक सार्वजनीन वन्द्य एवं प्रातः स्मरणीय भी हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय समर्पित रहा है। इनका सम्पूर्ण-जीवन अथाह समुद्र की भाँति है, जहाँ निरन्तर गोता लगाने

पर केवल रत्न की ही प्राप्ति होती है, पर यह अमूल्य रत्न केवल साधक को ही मिल पाता है। साधक की साधना जब उच्च कोटि की हो जाती है तब साध्य संभव हो पाता है। राजेन्द्र कोष तो इनकी अक्षय शब्द मंजूषा है, जो शब्द यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

ऐसे महान् मनीषी एवं सन्त को अक्षरशः समझाने के लिये डॉ. प्रियदर्शनाश्री जी एवं डॉ. सुदर्शनाश्री जी साध्वीद्वय ने (१) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "सूक्ति-सुधारस" (१ से ७ खण्ड) (२) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "जैनदर्शन वाटिका" तथा (३) 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्र सूरि : जीवन-सौरभ) इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना कर साधक की साधना को अतीव सरल बना दिया है। परम पूज्या ! साध्वीद्वय ने इन ग्रन्थों की रचना में जो अपनी बुद्धिमत्ता एवं लेखन-चातुर्य का परिचय दिया है वह स्तुत्य ही नहीं; अपितु इस भौतिकवादी युग में जन-जन के लिये अध्यात्मक्षेत्र में पाथेय भी बनेगा। मैंने इन ग्रन्थों का विहंगम अवलोकन किया है। भाषा की प्रांजलता और विषयबोध की सुगमता तो पाठक को उत्तरोत्तर अध्ययन करने में रूचि पैदा करेगी, वह सहज ही सबके लिये हृदयग्राहिणी बनेगी। यही लेखिकाद्वय की लेखनी की सार्थकता बनेगी।

अन्त में यहाँ यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "रघुवंश" महाकाव्य-रचना के प्रारंभ में कालिदास ने लिखा है कि "तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" पर वही कालिदास कवि सम्राट् कहलाये। इसीतरह आप दोनों का यह परम लोकोपकारी अथक प्रयास भौतिकवादी मानवमात्र के लिये शाश्वत शान्ति प्रदान करने में सहायक बन पायेगा। इति। शुभम्।

25-7-98
3ब - 12 मधुबन हा. बो.
बासनी, जोधपुर

15

पं. हीरालाल शास्त्री
एम.ए.

विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री एम. ए., पीएच. डी. एवं डॉ. सुदर्शनाश्री एम. ए. पीएच. डी. द्वारा रचित ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) सुभाषित सूक्तियों एवं वैदुष्यपूर्ण हृदयग्राही वाक्यों के रूप में एक पीयूष सागर के समान है।

आज के गिरते नैतिक मूल्यों, भौतिकवादी दृष्टिकोण की अशान्ति एवं तनावभरे सांसारिक प्राणी के लिए तो यह एक रसायन है, जिसे पढ़कर आत्मिक शान्ति, दृढ इच्छा-शक्ति एवं नैतिक मूल्यों की चारित्रिक सुरभि अपने जीवन के उपवन में व्यक्ति एवं समष्टि की उदात्त भावनाएँ गहगहायमान हो सकेगी, यह अतिशयोक्ति नहीं, एक वास्तविकता है।

आपका प्रयास स्वान्तःसुखाय लोकहिताय है। 'सूक्ति-सुधारस' जीवन में संघर्षों के प्रति साहस से अडिग रहने की प्रेरणा देता है।

ऐसे सत्साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की महक से व्यक्ति को जीवंत बनाकर आध्यात्मिक शिवमार्ग का पथिक बनाते हैं।

आपका प्रयास भगीरथ प्रयास है।

भविष्य में शुभ कामनाओं के साथ।

निवृत्तमान संस्कृत व्याख्याता
राज. शिक्षा-सेवा
राजस्थान

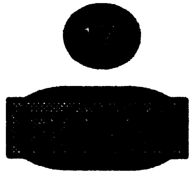
महावीर जन्म कल्याणक, गुरुवार
दि. 9 अप्रैल, 1998
ज्योतिष-सेवा
राजेन्द्रनगर
जालोर (राज.)

— डॉ. अखिलेशकुमार राय

साध्वीद्वय डो. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी द्वारा रचित प्रस्तुत पुस्तक का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया है। इनकी रचना 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) में श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वर जी की अमरकृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर कुछ प्रमुख सूक्तियों का सुंदर-सरस व सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। साध्वीद्वय का यह संकल्प है कि 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में उपलब्ध लगभग २७०० सूक्तियों का सात खण्डों में संचयन कर सर्वसाधारण के लिये सुलभ कराया जाय। इसप्रकार का अनूठा संकल्प अपने आपमें अद्वितीय कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि ऐसी सूक्ति सम्पन्न रचनाओं से पाठकगण के चरित्र निर्माण की दिशा निर्धारित होगी।

अब सुहृद्जनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे इसे अधिक से अधिक लोगों के पठनार्थ सुलभ करायें। मैं इस महत्त्वपूर्ण रचना के लिये साध्वीद्वय की सराहना करता हूँ; इन्हें साधुवाद देता हूँ और यह शुभकामना प्रकट करता हूँ कि ये इसप्रकार की और भी अनेक रचनायें समाज को उपलब्ध करायें।

दिनांक 9 अप्रैल, 1998
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
1/1 प्रोफेसर कालोनी,
महाराजा कोलेज,
छतरपुर (म.प्र.)



— *डॉ. अमृतलाल गाँधी*
सेवानिवृत्त प्राध्यापक,

सम्यग्ज्ञान की आराधना में समर्पिता विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शना श्रीजी म. ने 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) की 2667 सूक्तियों में अभिधान राजेन्द्र कोष के मन्थन का मक्खन सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर जनसाधारण की सेवार्थ यह ग्रन्थ लिखकर जैन साहित्य के विपुल ज्ञान भण्डार में सराहनीय अभिवृद्धि की है। साध्वीद्वय ने कोष के सात भागों की सूक्तियों / सुकथनों की अलग-अलग सात खण्डों में व्याख्या करने का सफल सुप्रयास किया है, जिसकी मैं सराहना एवं अनुमोदना करते हुए स्वयं को भी इस पवित्र ज्ञानगंगा की पवित्र धारा में आंशिक सहभागी बनाकर सौभाग्यशाली मानता हूँ।

वस्तुतः अभिधान राजेन्द्र कोष पयोनिधि है। पूज्या विदुषी साध्वीद्वयने सूक्ति-सुधारस रचकर एक ओर कोष की विश्वविख्यात महिमा को उजागर किया है और दूसरी ओर अपने शुभ श्रम, मौलिक अनुसंधान दृष्टि, अभिनव कल्पना और हंस की तरह मुक्ताचयन की विवेकशीलता का परिचय दिया है।

मैं उनको इस महान् कृति के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय,
जोधपुर

दिनांक : 16 अप्रैल, 1998
738, नेहरूपार्क रोड,
जोधपुर (राजस्थान)

18

[illegible]

— *भागचन्द जैन कवाड़*

प्राध्यापक (अंग्रेजी)

प्रस्तुत ग्रंथ "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड) 5 परिशिष्टों में विभक्त 2667 सूक्तियों से युक्त एक बहुमूल्य एवं अमृत कणों से परिपूर्ण ग्रन्थ है। विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्यान्य उपयोगी जीवन दर्शन से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया गया है। उदाहरण स्वरूप जीवनोपयोगी, नैतिकता तथा आध्यात्मिक जगत् को स्पर्श करने वाले विषय यथा – 'धर्म में शीघ्रता', 'आत्मवत् चाहो', 'समाधि', 'किञ्चिद् श्रेयस्कर', 'अकथा', 'क्रोध परिणाम', 'अपशब्द', सच्चा भिक्षु, धीर साधक, पुण्य कर्म, अजीर्ण, बुद्धियुक्त वाणी, बलप्रद जल, सच्चा आराधक, ज्ञान और कर्म, पूर्ण आत्मस्थ, दुर्लभ मानव-भव, मित्र-शत्रु कौन ?, कर्त्ता-भोक्ता आत्मा, रत्नपारखी, अनुशासन, कर्म विपाक, कल्याण कामना, तेजस्वी वचन, सत्योपदेश, धर्मपात्रता, स्याद्वाद आदि।

सर्वत्र ग्रन्थ में अमृत-कणों का कलश छलक रहा है तथा उनकी सुवास व्याप्त है जो पाठक को भाव विभोर कर देती है, वह कुछ क्षणों के लिए अतिशय आत्मिक सुख में लीन हो जाता है। विदुषी महासतियाँ द्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री जी एवं डॉ. सुदर्शना श्री जी ने अपनी प्रखर लेखनी के द्वारा गूढ़तम विषयों को सरलतम रूप से प्रस्तुत कर पाठकों को सहज भाव से सुधा का पान कराया है। धन्य है उनकी अथक साधना लगन व परिश्रम का सुफल जो इस धरती पर सर्वत्र आलोक किरणें बिखेरेगा और धन्य एवं पुलकित हो उठेंगे हम सब।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
दिनांक 9 अप्रैल 1998
विजय निवास,
कचहरी रोड़,
किशनगढ़ शहर (राज.)

अग्रवाल गर्ल्स कोलेज
मदनगंज (राज.)


दर्पण

19

स्वरूप

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' ग्रन्थ का प्रकाशन 7 खण्डों में हुआ है। प्रथम खण्ड में 'अ' से 'ह' तक के शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तियाँ संजोयी गई हैं। अन्त में अकारादि अनुक्रमणिका दी गई है। प्रायः यही क्रम 'सूक्ति सुधारस' के सातों खण्डों में मिलेगा। शीर्षकों का अकारादि क्रम है। शीर्षक सूची विषयानुक्रम आदि हर खण्ड के अन्त में परिशिष्ट में दी गई है। पाठक के लिए परिशिष्ट में उपयोगी सामग्री संजोयी गई है। प्रत्येक खण्ड में 5 परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि अनुक्रमणिका, द्वितीय परिशिष्ट में विषयानुक्रमणिका, तृतीय परिशिष्ट में अभिधान राजेन्द्र : पृष्ठ संख्या, अनुक्रमणिका, चतुर्थ परिशिष्ट में जैन एवं जैनेतर ग्रन्थ: गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका और पञ्चम परिशिष्ट में 'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची दी गई है। हर खण्ड में यही क्रम मिलेगा। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड में सूक्ति का क्रम इसप्रकार रखा गया है कि सर्व प्रथम सूक्ति का शीर्षक एवं मूल सूक्ति दी गई है। फिर वह सूक्ति अभिधान राजेन्द्र कोष के किस भाग के किस पृष्ठ से उद्धृत है। सूक्ति-आधार ग्रन्थ कौन-सा है ? उसका नाम और वह कहाँ आयी है, वह दिया है। अन्त में सूक्ति का हिन्दी भाषा में सरलार्थ दिया गया है।

सूक्ति-सुधारस के प्रथम खण्ड में 251 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के द्वितीय खण्ड में 259 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के तृतीय खण्ड में 289 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के चतुर्थ खण्ड में 467 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के पंचम खण्ड में 471 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के षष्टम खण्ड में 607 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के सप्तम खण्ड में 323 सूक्तियाँ हैं।

कुल मिलाकर 'सूक्ति सुधारस' के सप्त खण्डों में 2667 सूक्तियाँ हैं। इस ग्रन्थ में न केवल जैनागमों व जैन ग्रन्थों की सूक्तियाँ हैं, अपितु वेद,

उपनिषद, गीता, महाभारत, आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, पुराण, स्मृति, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की भी सूक्तियाँ हैं ।

1. विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय
2. लेखिका द्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

'विश्वपूज्यः'
जीवन-दर्शन

20

[illegible]

महिमामण्डित बहुरत्नावसुन्धरा से समलंकृत परम पावन भारतभूमि की वीर प्रसविनी राजस्थान की ब्रजधरा भरतपुर में सन् 1827 - 3 दिसम्बर को पौष शुक्ला सप्तमी, गुरुवार के शुभ दिन एक दिव्य नक्षत्र संतशिरोमणि विश्वपूज्य आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने जन्म लिया, जिन्होंने अस्सी वर्ष की आयु तक लोकमाङ्गल्य की गंगधारा समस्त जगत् में प्रवाहित की ।

उनका जीवन भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए समर्पित हुआ ।

वह युग अँग्रेजी राज्य की धूमिल घन घटाओं से आच्छादित था। पाश्चात्त्य संस्कृति की चकाचौंध ने भारत की सरल आत्मा को कुण्ठित कर दिया था । नव पीढ़ी ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार से प्रभावित हो गई थी। अँग्रेजी शासन में पद-लिप्सा के कारण शिक्षित युवापीढ़ी अतिशय आकर्षित थी ।

ऐसे अन्धकारमय युग में भारतीय संस्कृति की गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए जहाँ एक ओर राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, तो दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का शंखनाद किया। उसी युग में पुनर्जागरण के लिए प्रार्थना समाज और एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की । 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को अँग्रेजी शासन की तोपों ने कुचल दिया था । भारतीय जनता को निराशा और उदासीनता ने घेर लिया था ।

जागृति का शंखनाद फूँकने के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने यह उद्घोषणा की – 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना की ।

श्री मोहनदास कर्मचन्द गान्धी (राष्ट्रपिता - महात्मा गाँधी) को महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की स्वीकृति से उनके पिताश्री कर्मचन्दजी ने इंग्लैंड में बार-एट-लॉ उपाधि हेतु भेजा। गाँधीजी ने महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की तीन प्रतिज्ञाएँ पालन कर भारत की गौरवशालिनी संस्कृति को उजागर किया। ये तीन प्रतिज्ञाएँ थीं — 1 मांसाहार त्याग 2. मदिरापान त्याग और 3. ब्रह्मचर्य का पालन। ये प्रतिज्ञाएँ भारतीय संस्कृति की रवि-रश्मियाँ हैं, जिनके प्रकाश से भारत जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं, परन्तु आँग्ल शासन ने हमारी उज्ज्वल संस्कृति को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया।

ऐसे समय में अनेक दिव्य एवं तेजस्वी महापुरुषों ने जन्म लिया जिनमें श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री आत्मारामजी (सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी) एवं विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी म. आदि हैं।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने चरित्र निर्माण और संस्कृति की पुनर्स्थापना के लिए जो कार्य किया, वह स्वंणाक्षरों में अङ्कित है। एक ओर उन्होंने भारतीय साहित्य के गौरवशाली, चिन्तामणि रत्न के समान 'अभिधान राजेन्द्र कोष' को सात खण्डों में रचकर भारतीय वाङ्मय को विश्व में गौरवान्वित किया, तो दूसरी ओर उन्होंने सरल, तपोनिष्ठ, त्याग, करुणार्द्र और कोमल जीवन से सबको मैत्री-सूत्र में गुम्फित किया।

विश्वपूज्य की उपाधि उनको जनता जनार्दन ने, उनके प्रति अगाध श्रद्धा-प्रीति और भक्ति से प्रदान की है, यद्यपि ये निर्मोही अनासक्त योगी थे। न तो किसी उपाधि-पदवी के आकाङ्क्षी थे और न अपनी यशोपताका फहराने के लिए लालायित थे।

उनका जीवन अनन्त ज्योतिर्मय एवं करुणा रस का सुधा सिन्धु था!

उन्होंने अपने जीवनकाल में महनीय 61 ग्रन्थों की रचना की है जिनमें काव्य, भक्ति और संस्कृति की रसवंती धाराएँ प्रवाहित हैं।

वस्तुतः उनका मूल्यांकन करना हमारे वश की बात नहीं, फिरभी हम प्रीतिवश यह लिखती हैं कि जिस समय भारत के मनीषी-साहित्यकार एवं कवि भारतीय संस्कृति और साहित्य को पुनर्जीवित करना चाहते थे, उस समय विश्वपूज्य भी भारत के गौरव को उद्भासित करने के लिए 63 वर्ष की आयु में सन् 1890 आश्विन शुक्ला 2 को कोष के प्रणयन में जुट गए। इस कोष के सप्त खण्डों को उन्होंने सन् 1903 चैत्र शुक्ला 13 को परिसम्पन्न किया। यह शुभ दिन भगवान् महावीर का जन्म कल्याणक दिवस है। शुभारम्भ नवरात्रि में किया और समापन प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिन वसन्त ऋतु की मनमोहक सुगन्ध बिखेरते हुए किया।

यह उल्लेख करना समीचीन है कि उस युग में मैकाले ने अँग्रेजी भाषा और साहित्य को भारतीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अनिवार्य कर दिया था और नई पीढ़ी अँग्रेजी भाषा तथा साहित्य को पढ़कर भारतीय साहित्य व संस्कृति को हेय समझने लगी थी, ऐसे पराभव युग में बालगंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य', जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजी ने 'कर्मयोग', श्रीमद् आत्मारामजी ने 'जैन तत्त्वादर्श' व 'अज्ञान तिमिर भास्कर',[1] महान् मनीषी अरविन्द घोष ने 'सावित्री' महाकाव्य लिखकर पश्चिम-जगत् को अभिभूत कर दिया।

उस युग में प्रज्ञा महर्षि जैनाचार्य विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी गुरुदेव ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' की रचना की। उनके द्वारा निर्मित यह अनमोल ग्रन्थराज एक अमरकृति है। यह एक ऐसा विशाल कार्य था, जो एक व्यक्ति की सीमा से परे की बात थी, किन्तु यह दायित्व विश्वपूज्य ने अपने कंधों पर ओढ़ा।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के पुनर्जागरण के युग में विश्वपूज्य ने महान् कोष को रचकर जगत् को ऐसा अमर ग्रन्थ दिया जो चिर नवीन है। यह 'एन साइक्लोपिडिया' समस्त भाषाओं की करुणार्द्र

---

1. अज्ञान तिमिर भास्कर को पढ़कर अंग्रेज विद्वान् हार्नेल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रीमद् आत्मारामजी को 'अज्ञान तिमिर भास्कर' के अलंकरण से विभूषित किया तथा उन्होंने अपने ग्रन्थ 'उपासक दशांग' के भाष्य को उन्हें समर्पित किया।

माता संस्कृत, जनमानस में गंग-धारा के समान बहनेवाली जनभाष
अर्धमागधी और जनता-जनार्दन को प्रिय लगनेवाली प्राकृत भाषा
इन तीनों भाषाओं के शब्दों की सुस्पष्ट, सरल और सहज व्याख्या
उद्भासित करता है ।

इस महाकोष का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें गीता, मनुस्मृति ऋग्वेद, पद्मपुराण, महाभारत, उपनिषद, पातंजल योगदर्शन, चाणक्य नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की सुबोध टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध हैं । साथ ही आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' प भी व्याख्याएँ हैं ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' की प्रशंसा भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वान् करते नहीं थकते । इस ग्रन्थ रत्नमाला के सात खण्ड सात अनुपम दिव्य रत्न हैं, जो अपनी प्रभा से साहित्य-जगत् को प्रदीप्त कर रहे हैं ।

इस भारतीय राजर्षि की साहित्य एवं तप-साधना पुरातन ऋषि के समान थी । वे गुफाओं एवं कन्दराओं में रहकर ध्यानालीन रहते थे । उन्होंने स्वर्णगिरि, चामुण्डावन, मांगीतुंगी आदि गुफाओं के निर्जन स्थानों में तप एवं ध्यान-साधना की । ये स्थान वन्य पशुओं से भयावह थे, परन्तु इस ब्रह्मर्षि के जीवन से जो प्रेम और मैत्री की दुग्धधारा प्रवाहित होती थी, उससे हिंस्र पशु-पक्षी भी उनके पास शांत बैठते थे और भयमुक्त हो चले जाते थे ।

ऐसे महापुरुष के चरण कमलों में राजा-महाराजा, श्रीमन्त, राजपदाधिकारी नतमस्तक होते थे । वे अत्यन्त मधुर वाणी में उन्हें उपदेश देकर गर्व के शिखर से विनय-विनम्रता की भूमि पर उतार लेते थे और वे दीन-दुखियों, दरिद्रों, असहायों, अनाथों एवं निर्बलों के लिए साक्षात् भगवान् थे ।

उन्होंने सामाजिक कुरीतियों-कुपरम्पराओं, बुराइयों को समाप्त करने के लिए तथा धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, मिथ्याधारणाओं और कुसंस्कारों को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर पैदल विहार कर विभिन्न प्रवचनों के माध्यम से उपदेशामृत की अजस्रधारा प्रवाहित

की। तृष्णातुर मनुष्यों को संतोषामृत पिलाया। कुसंपों के फुफकारते फणिधरों को शांत कर समाज को सुसंप का सुधा-पान कराया।

विश्वपूज्य ने नारी-गरिमा के उत्थान के लिए भी कन्या-पाठशालाएँ, दहेज उन्मूलन, वृद्ध-विवाह निषेध आदि का आजीवन प्रचार-प्रसार किया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' के अनुरूप सन्देश दिया अपने प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से।

गुरुदेव ने पर्यावरण-रक्षण के लिए वृक्षों के संरक्षण पर जोर दिया। उन्होंने पशु-पक्षी के जीवन को अमूल्य मानते हुए उनके प्रति प्रेमभाव रखने के लिए उपदेश दिए। पर्वतों की हरियाली, वन-उपवनों की शोभा, शान्ति एवं अन्तर-सुख देनेवाली है। उनका रक्षण हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है। इसप्रकार उन्होंने समस्त जीवराशि के संरक्षण के लिए उपदेश दिया।

काव्य विभूषा : उनकी काव्य कला अनुपम है। उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियों में अनेक सज्झाय व स्तवन गीत रचे हैं। उन्होंने शास्त्रीय रागों में ठुमरी, कल्याण, भैरवी, आशावरी आदि का अपने गीतों में सुरम्य प्रयोग किया है। लोकप्रिय रागिनियों में वनझारा, गरबा, ख्याल आदि प्रियंकर हैं। प्राचीन पूजा गीतों की लावनियों में 'सलूणा', 'रेखता', 'तीरथनी आशातना नवि करिए रे' आदि रागों का प्रयोग मनमोहक हैं। उन्होंने उर्दू की गजल का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है।

चैत्यवंदन - स्तुतियों में - दोहा, शिखरणी, स्रग्धरा, मालिनी, पद्धडी प्रमुख हैं। पद्धडी छन्द में रचित श्री महावीर जिन चैत्यवंदन की एक वानगी प्रस्तुत है –

"संसार सागर तार धीर, तुम विण कोण मुझ हरत पीर।
मुझ चित्त चंचल तुं निवार, हर रोग सोग भयभीत वार॥ [1]

एक निश्छल भक्त का दैन्य निवेदन मौन-मधुर है। साथ ही अपने परम तारक परमात्मा पर अखण्ड विश्वास और श्रद्धा-भक्ति को प्रकट करता है।

---

1 जिन - भक्ति - मंजूषा भाग - 1

चौपड़ क्रीड़ा- सज्झाय में अलौकिक निरंजन शुद्धात्म चेतन रूप प्रियतम के साथ विश्वपूज्य की शुद्धात्मा रूपी प्रिया किस प्रकार चौपड़ खेलती है ? वे कहते हैं –

'रंग रसीला मारा, प्रेम पनोता मारा, सुखरा सनेही मारा साहिबा ।
पिउ मोरा चोपड़ इणविध खेल हो ॥
चार चोपड़ चारों गति, पिउ मोरा चोरासी जीवा जोन हो ।
कोठा चोरासिये फिरे, पिउ मोरा सारी पासा वसेण हो ॥'' [1]

यह चौपड़ का सुन्दर रूपक है और उसके द्वारा चतुर्गति रूप संसार में चौपड़ का खेल खेला जा रहा है । साधक की शुद्धात्म-प्रिया चेतन रूप प्रियतम को चौपड़ के खेल का रहस्योद्घाटन करते हुए कहती है कि चौपड़ चार पट्टी और 84 खाने की होती है । इसीतरह चतुर्गति रूप चौपड़ में भी 84 लक्षयोनि रूप 84 घर-उत्पत्ति-स्थान होते हैं। चतुर्गति चौपड़ के खेल को जीतकर आत्मा जब विजयी बन जाती है, तब वह मोक्ष रूपी घर में प्रवेश करती है।

अध्यात्मयोगी संत आनंदघन ने भी ऐसी ही चौपड़ खेली है –

''प्राणी मेरो, खेलै चतुरगति चोपर ।
नरद गंजफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुद्धिवर ॥
राग दोस मोह के पासे, आप बणाए हितधर ।
जैसा दाव परै पासे का, सारि चलावै खिलकर ॥'' [2]

विश्वपूज्य का काव्य अप्रयास हृदय वीणा पर अनुगुंजित है । 'पिउ' [प्रियतम] शब्द कविता की अंगूठी में हीरककणी के समान मानो जड़ दिया।

विश्वपूज्य की आत्मरमणता उनके पदों में दृष्टिगत होती है । वे प्रकाण्ड विद्वान् - मनीषी होते हुए भी अध्यात्म योगीराज आनन्दघन की तरह अपनी मस्त फकीरी में रमते थे । उनका यह पद मनमोहक है –

'अवधू आतम ज्ञान में रहना,
किसी कु कुछ नहीं कहना ॥' [3]

---

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 2 आनन्दघन ग्रन्थावली
3 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1

'मौनं सर्वार्थ साधनम्' की अभिव्यंजना इसमें मुखरित हुई है। उनके पदों में व्यक्ति की चेतना को झकझोर देने का सामर्थ्य है, क्योंकि वे उनकी सहज अनुभूति से निःसृत है। विश्वपूज्य का अंतरंग व्यक्तित्व उनकी काव्य-कृतियों में व्याप्त है। उनके पदों में कबीर-सा फक्कड़पन झलकता है। उनका यह पद द्रष्टव्य है –

"ग्रन्थ रहित निर्ग्रन्थ कहीजे, फकीर फिकर फकनारा।
ज्ञानवास में बसे संन्यासी, पंडित पाप निवारा रे
सद्गुरु ने बाण मारा, मिथ्या भरम विदारा रे॥" [1]

विश्वपूज्य का व्यक्तित्व वैराग्य और अध्यात्म के रंग में रंगा था। उनकी आध्यात्मिकता अनुभवजन्य थी। उनकी दृष्टि में आत्मज्ञान ही महत्त्वपूर्ण था। 'परभावों में घूमनेवाला आत्मानन्द की अनुभूति नहीं कर सकता। उनका मत था कि जो पर पदार्थों में रमता है वह सच्चा साधक नहीं है। उनका एक पद द्रष्टव्य है –

'आतम ज्ञान रमणता संगी, जाने सब मत जंगी।
पर के भाव लहे घट अंतर, देखे पक्ष दुरंगी॥
सोग संताप रोग सब नासे, अविनासी अविकारी।
तेरा मेरा कछु नहीं ताने, भंगे भवभय भारी॥
अलख अनोपम रूप निज निश्चय, ध्यान हिये बिच धरना।
दृष्टि राग तजी निज निश्चय, अनुभव ज्ञानकुं वरना॥"[2]

उनके पदों में प्रेम की धारा भी अबाधगति से बहती है। उन्होंने शांतिनाथ परमात्मा को प्रियतम का रूपक देकर प्रेम का रहस्योद्घाटन किया है। वे लिखते हैं –

'श्री शांतिजी पिउ मोरा, शांतिसुख सिरदार हो।
प्रेमे पाम्या प्रीतड़ी, पिउ मोरा प्रीतिनी रीति अपार हो॥
शांति सलूणो म्हारो, प्रेम नगीनो म्हारो, स्नेह समीनो म्हारो नाहलो।
पिउ पल एक प्रीति पमाड हो, प्रीत प्रभु तुम प्रेमनी,
पीउ मोरा मुज मन में नहिं माय हो॥" [3]

---

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1
2 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1
3 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1

यद्यपि उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ साधारण-सी भावुक स्थिति न होकर आत्मानुभवजन्य परमात्म-प्रेम है, आत्मा-परमात्मा का विशुद्ध निरूपाधिक प्रेम है। इसप्रकार, विश्वपूज्य की कृतियों में जहाँ-जहाँ प्रेम-तत्त्व का उल्लेख हुआ है, वह नर-नारी का प्रेम न होकर आत्म-ब्रह्म-प्रेम की विशुद्धता है।

विश्वपूज्य में धर्म सद्भाव भी भरपूर था। वे निष्पक्ष, निस्पृही मानव-मानव के बीच अभेद भाव एवं प्राणि मात्र के प्रति प्रेम-पीयूष की वर्षा करते थे। उन्होंने अरिहन्त, अल्लाह-ईश्वर, रूद्र-शिव, ब्रह्मा-विष्णु को एक ही माना है। एक पद में तो उन्होंने सर्व धर्मों में प्रचलित परमात्मा के विविध नामों का एक साथ प्रयोग कर समन्वय-दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। उनकी सर्व धर्मों के प्रति समादरता का निम्नांकित पद मननीय है –

'ब्रह्म एक छे लक्षण लक्षित, द्रव्य अनंत निहारा।
सर्व उपाधि से वर्जित शिव ही, विष्णु ज्ञान विस्तारा रे॥
ईश्वर सकल उपाधि निवारी, सिद्ध अचल अविकारा।
शिव शक्ति जिनवाणी संभारी, रूद्र है करम संहारा रे॥
अल्लाह आतम आपहि देखो, राम आतम रमनारा।
कर्मजीत जिनराज प्रकासे, नयथी सकल विचारा रे॥' [1]

विश्वपूज्य के इस पद की तुलना संत आनंदघन के पद से की जा सकती है। [2]

यह सच है कि जिसे परमतत्त्व की अनुभूति हो जाती है, वह संकीर्णता के दायरे में आबद्ध नहीं रह सकता। उसके लिए राम कृष्ण, शंकर-गिरीश, भूतेश्वर, गोविन्द, विष्णु, ऋषभदेव और महादेव

---

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 पृ [illegible]

2 'राम कहो रहमान कहो, कोउ कान्ह कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पना रोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
निज पद रमे राम सो कहिये, रहम करे रहमान री।
करषे करम कान्ह सो कहिये, महादेव निर्वाण री॥
परसे रूप सो पारस कहिये, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय निःकर्मरी॥' आनंदघन ग्रन्थावली, पद ६५

या ब्रह्म आदि में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। उसका तो अपना एक धर्म होता है और वह है – आत्म-धर्म (शुद्धात्म-धर्म)। यही बात विश्वपूज्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। सामान्यतया जैन परम्परा में परम तत्त्व की उपासना तीर्थंकरों के रूप में की जाती रही है; किन्तु विश्वपूज्य ने परमतत्त्व की उपासना तीर्थंकरों की स्तुति के अतिरिक्त शंकर, शंभु, भूतेश्वर, महादेव, जगकर्ता, स्वयंभू, पुरूषोत्तम, अच्युत, अचल, ब्रह्म-विष्णु-गिरीश इत्यादि के रूप में भी की है। उन्होंने निर्भीक रूप से उद्घोषणा की है –

"शंकर शंभु भूतेश्वरो ललना, मही माहें हो वली किस्यो महादेव,
जिनवर ए जयो ललना।
जगकर्ता जिनेश्वरो ललना, स्वयंभू हो सहु सुर करे सेव,
जिनवर ए जयो ललना॥
वेद ध्वनि वनवासी ललना, चौमुखे हो चारे वेद सुचंग, जिन.।
वाणी अनक्षरी दिलवसी ललना, ब्रह्माण्डे बीजो ब्रह्म विभंग, जि.॥
पुरूषोत्तम परमातमा ललना, गोविन्द हो गिरूवो गुणवंत, जि.।
अच्युत अचल छे ओपमा ललना, विष्णु हो कुण अवर कहंत, जि.॥
नाभेय रिषभ जिणंदजी ललना, निश्चय थी हो देख्यो देव दमीश।
एहिज सूरिशजेन्द्र जी ललना, तेहिज हो ब्रह्मा विष्णु गिरीश, जि.॥"[1]

वास्तव में, विश्वपूज्य ने परमात्मा के लोक प्रसिद्ध नामों का निर्देश कर समन्वय-दृष्टि से परमात्म-स्वरूप को प्रकट किया है।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि विश्वपूज्य ने धर्मान्धता, संकीर्णता, असहिष्णुता एवं कूपमण्डूकता से मानव-समाज को ऊपर उठाकर एकता का अमृतपान कराया। इससे उनके समय की राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का भी परिचय मिलता है।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' कथाओं का सुधासिन्धु है। कथाओं में जीवन को सुसंस्कृत, सभ्य एवं मानवीय गुण-सम्पदा से विभूषित करने का सरस शैली में अभिलेखन हुआ है। कथाएँ इक्षुरस के समान मधुर, सरस और सहज शैली में आलेखित हैं। शैली में प्रवाह हैं, प्राकृत और संस्कृत शब्दों को हीरक कणियों के समान तराश कर

1 जिन भक्ति मञ्जूषा भाग - 1 पृ ~:

कथाओं को सुगम बना दिया है।

उपसंहार :

विश्वपूज्य अजर-अमर है। उनका जीवन 'तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्त वर्णम्' की उक्ति पर खरा उतरता है। जीवन में तप की कंचनता है, कवि-सी कोमलता है। विद्वत्ता के हिमाचल में से करुणा की गंग-धारा प्रवाहित है।

उन्होंने जगत् को 'अभिधान राजेन्द्र कोष' रूपी कल्पतरू देकर इस धरती को स्वर्ग बना दिया है, क्योंकि इस कोष में ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग का त्रिवेणी संगम हुआ है। यह लोक माङ्गल्य से भरपूर क्षीर-सागर है। उनके द्वारा निर्मित यह कोष आज भी आकाशी ध्रुवतारे की भाँति टिमटिमा रहा है और हमें सतत दिशा-निर्देश दे रहा है।

विश्वपूज्य के लिए अनेक अलंकार ढूँढ़ने पर भी हमें केवल एक ही अलंकार मिलता है — वह है — अनन्वय अलंकार — अर्थात् विश्वपूज्य विश्वपूज्य ही है।

उनका स्वर्गवास 21 दिसम्बर सन् 1906 में हुआ, परन्तु कौन कहता है कि विश्वपूज्य विलीन हो गये? वे जन-जन के श्रद्धा केन्द्र सबके हृदय-मंदिर में विद्यमान हैं!

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

(षष्ठम खण्ड)

मंगल का अर्थ

मंगिज्जएऽधिगम्मइ, जेण हिअं तेण मंगलं होइ ।
अहवा मंगो धम्मो, तं लाइ तयं समादत्ते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 8]
— *विशेषावश्यक भाष्य 22*

जिसके द्वारा हित की याचना एवं प्राप्ति होती है, उसे 'मंगल' कहते हैं अथवा मंगल का अर्थ धर्म है और उस धर्म को जो ग्रहण करता है, वह मंगल है ।

2. 'मंगल' शब्द की व्युत्पत्ति

मां गालयति भवादिति मङ्गलं संसारादपनयतीत्यर्थः ।
अथवा शास्त्रस्य मा भूद् गलो विघ्नोऽस्मादिति मङ्गलम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 9]
— *विशेषावश्यक भाष्य 24 टीका*

जो मुझे संसार से दूर करता है वह 'मंगल' है अथवा 'मा' निषेधार्थ है और 'गल' विघ्नवाचक है । अतः 'मंगल' का अर्थ होता है - शास्त्र के प्रारम्भ में विघ्न न हो ।

3. मङ्गल चतुष्क

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 16]
— *आवश्यक सूत्र - 4*

मंगल चार हैं-अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ।

4. 'माँस' शब्द की निरुक्ति

मां स भक्षयिताऽमुत्र, यस्य मांस मिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं, प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 32]
— *मनुस्मृति 5/55*

"मैं जिसके माँस को यहाँ खाता हूँ, वह मुझे भी परलोक में खायेगा।" मनीषीगण 'मांस' शब्द का यही मांसत्व बताते हैं।

5. समान फल किसे ?

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन, यो यजेत शतं समाः।
मांसानि च न खादेद्य-स्तयोस्तुल्यं भवेत् फलम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 34]

— *मनुस्मृति 5/53*

प्रत्येक वर्ष सौ बार अश्वमेध यज्ञ करनेवाले और मांस भक्षण नहीं करने वाले इन दोनों पुरुषों को बराबर फल मिलता है।

6. ब्रह्मचर्य से उत्तम गति

एक रात्रौषितस्यापि, या गति र्ब्रह्मचारिणः।
न सा क्रतुसहस्रेण, प्राप्तुं शक्या युधिष्ठिरः !॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 34]

— *स्याद्वादमंजरी से उद्धृत पृ. 209*

हे युधिष्ठिर ! एक रात ब्रह्मचर्य में रहनेवाले पुरुष को जो उत्तम गति मिलती है, वह गति हजारों यज्ञ करने से भी नहीं मिलती।

7. वैर-विरोध-त्याग

पभू दोसे नीरा किच्चा; ण विरुज्झेज्ज केणई।
मणसा वयसा चेव, कायसा चेव अंतसो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 43]

— *सूत्रकृतांग - 1/11/12*

जितेन्द्रिय साधक मिथ्यात्व आदि दोषों को दूर करके किसी भी प्राणी के साथ जीवनभर मन-वचन और काया से वैर-विरोध न करें।

8. ना काहू से वैर

ण विरुज्झेज्ज केणई।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 43]

— *सूत्रकृतांग - 1/11/12*

किसी के भी साथ वैर-विरोध मत करो ।

9. सर्वत्र अहिंसा

उड्ढं अहे तिरियं च, जे केइ तस-थावरा ।
सव्वत्थ विरतिं कुज्जा, संति निव्वाणमाहियं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 43]
— *सूत्रकृतांग 1/11/11*

उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक में जितने भी त्रस और स्थावर जीव हैं, सर्वत्र उन सब की हिंसा से दूर रहना चाहिए। वैर की शान्ति को ही निर्वाण कहा गया है ।

10. ज्ञानी का सार

एयं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसति कंचणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 43]
— *सूत्रकृतांग - 1/11/10*

किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करना ही ज्ञानी होने का सार है ।

11. सम्यग्दर्शन, दीपस्तम्भ

बुज्झमाणाण पाणाणं, किच्चं तणे ए कम्मुणा ।
आघाती साहु तं दीवं, पतिट्ठेसा पकुच्चई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 45]
— *सूत्रकृतांग - 1/11/23*

मिथ्यात्व, अविरति आदि संसार-सागर के स्रोतों के प्रवाह में बहते हुए तथा अपने कर्मों के द्वारा कष्ट पाते हुए प्राणियों के लिए सम्यगदर्शन (निर्वाण-मार्ग) ही विश्राम-स्थान है । तत्त्वज्ञों का कथन है कि सम्यगदर्शन (निर्वाण-मार्ग) ही मोक्ष-प्राप्ति का आधार है ।

12. समाधि से दूर

बुद्धामोत्ति य मन्नंता, अंतए ते समाहिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 45]
— *सूत्रकृतांग - 1/11/25*

अज्ञानवश अपने आपको ज्ञानी समझनेवाला समाधि से बहुत दूर है ।

13. मुनि-प्रवृत्ति, मोक्ष प्रधान

निव्वाणं परमं बुद्धा, णक्खत्ताणं व चंदिमा ।
तम्हा सदा जए दंते, निव्वाणं संधए मुणी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 45]

— ***सूत्रकृतांग*** - *1/11/22*

जैसे-चन्द्रमा सभी नक्षत्रों में प्रधान है, वैसे ही मोक्ष भी सभी पुरुषार्थों में प्रधान है । अतएव मुनि को सदा यतनाशील और जितेन्द्रिय होकर निर्वाण को केन्द्र में रखकर सभी प्रवृत्तियाँ करनी चाहिए ।

14. मोक्ष-मार्ग-साधना

सदा जए दंते, निव्वाणं संधए मुणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 45]

— ***सूत्रकृतांग*** - *1/11/22*

सदा जितेन्द्रिय और संयमशील होता हुआ मुनि निर्वाण की साधना करें ।

15. धर्मोपदेष्टा कौन ?

आयगुत्ते सया दंते, छिन्नसोए अणासवे ।
जे धम्मं सुद्धमक्खाइ, पडिपुन्नमणेलिसं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 45]

— ***सूत्रकृतांग*** - *1/11/24*

जो सदा आत्म-गुप्त तथा इन्द्रिय-दमन करनेवाला है, छिन्नस्रोत एवं अनास्रव है, वही इस शुद्ध, पूर्ण एवं अनुपम धर्म का उपदेश करता है ।

16. कंकपक्षीवत् पापी-अधम

विसएसणं झियायंति, कंका वा कलुसाहमा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 46]

— ***सूत्रकृतांग*** *1/11/28*

जो विषय भोगों का ध्यान किया करते हैं, वे कंकपक्षी के समान पापी और अधम हैं।

17. संयम, आत्म-रक्षा कवच

अत्तताए परिव्वए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 46]

— *सूत्रकृतांग - 1/11/32*

आत्म-रक्षा (आत्मा को पाप से बचाने) के लिए संयमशील होकर विचरण करें।

18. मेरुवत् अचल

अहणं वयमावन्नं; फासाउच्चावया फुसे ।
विणिहण्णेज्जा वाएण वे महागिरी ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 47]

— *सूत्रकृतांग - 1/11/37*

जिसप्रकार महागिरि मेरु हवा के झंझावात से विचलित नहीं होता उसीप्रकार व्रतनिष्ठ पुरुष सम-विषम, ऊँच-नीच और अनुकूल-प्रतिकूल परिषहों के आने पर भी धर्म-पथ से विचलित नहीं होता।

19. मग्नता

प्रत्याहृत्येन्द्रियव्यूहं, समाधाय मनोनिजम् ।
दधच्चिन्मात्रविश्रान्तिर्मग्न इत्यभिधीयते ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 47]

— *ज्ञानसार 2/1*

जो आत्मा इन्द्रिय समूह को नियन्त्रित और मन को समाधिस्थ (एकाग्र) कर केवल चैतन्य स्वरूप ज्ञान में विश्राम करती है, वह मग्न कहलाती है।

20. ज्ञान-लीनता

यस्य ज्ञान-सुधा-सिन्धौ, परब्रह्मणिमग्नता ।
विषयान्तरसंचारस्तस्य हलाहलोपमम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 48]

— *ज्ञानसार - 2/2*

ज्ञानामृत के समुद्र-रूपी परमात्म स्वरूप में जिसका मन डूब गया हो, उसे अन्य विषय में भटकना विष के समान लगता है।

21. परब्रह्मलीन

परब्रह्मणि मग्नस्य, श्लथा पौद्गलिकी कथा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 48]

— *ज्ञानसार 2/4*

परमात्म स्वरूप में लीन मनुष्य को पुद्गल-सम्बन्धी बात नीरस लगती है।

22. गोता ज्ञान सरोवर का

ज्ञानमग्नस्य यच्छर्म, तद्वक्तुं नैव शक्यते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 49]

— *ज्ञानसार 2/6*

ज्ञान-सरोवर में आकण्ठ डूबे हुए व्यक्ति को जो सुख-सन्तोष प्राप्त होता है, वह मुख से कहा नहीं जा सकता। ज्ञान-मग्न का सुख अवर्णनीय और अनुपम है।

23. पीयूषवर्षी योगीश्वर

यस्य दृष्टिः कृपावृष्टिर्गिरः शमसुधाकिरः ।
तस्मै नमः शुभज्ञानध्यानमग्नाय योगिने ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 50]

— *ज्ञानसार 2/8*

जिनकी दृष्टि कृपा की वृष्टि है और जिनकी वाणी उपशम रूपी अमृत का छिड़काव करनेवाली है, ऐसे प्रशस्त-ज्ञान-ध्यान में सदा लीन रहनेवाले उन महान् योगीश्वर को नमस्कार हो।

24. ज्ञान-पीयूष में मग्न

शमशैत्यपुशो यस्य विप्रुषोऽपि महाकथा ।
किं स्तुमो ज्ञान-पीयूषे, तस्य सर्वाङ्ग-मग्नताम् ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 50]

— *ज्ञानसार 2/7*

सहज शीतलता को पोषण करनेवाला एक बिन्दु मात्र ज्ञानामृत का भी बड़ा प्रभाव होता है तो फिर जो ज्ञानामृत में पूर्ण रूप से डूबा हुआ हो, उसकी तो भला हम किन शब्दों में स्तुति करें ?

25. मदिरा-पान-हानि

मद्यं पुनः प्रमादाङ्गं, तथा सच्चित्तनाशनम् ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 60]

— *हारिभद्रीयाष्टक 19/1*

मद्य प्रमाद का कारण है और शुभ चित्त का नाश करनेवाला है ।

26. मुनिवर मध्यस्थ

समशीलं मनो यस्य स मध्यस्थो महामुनिः ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 64]

— *ज्ञानसार - 16/3*

जिनका मन समत्वभावी हैं, ऐसे मुनिवर वास्तव में मध्यस्थ हैं ।

27. मनः बछड़ा-बन्दर

मनोवत्सो युक्तिगवीं, मध्यस्थस्यानुधावति ।
तामाकर्षति पुच्छेन, तुच्छाग्रहमनः कपिः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 64]

— *ज्ञानसार - 16/2*

मध्यस्थ पुरुष का मनरूपी बछड़ा युक्ति रूपी गाय के पीछे दौड़ता है, जबकि दीन-हीन वृत्तिवाले पुरुष का मनरूपी बन्दर युक्तिरूपी गाय की पूँछ पकड़कर पीछे खींचता है ।

28. मध्यस्थ दृष्टि निष्पक्षपाती

स्वागमं रागमात्रेण, द्वेषमात्रात् परागमम् ।
न श्रयामः त्यजामो वा, किन्तु मध्यस्थया दृशा ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 64]

— *ज्ञानसार 16/7*

मध्यस्थ दृष्टि व्यक्ति अनुरागवश अपने आगमशास्त्र को स्वीकार नहीं करते और द्वेषवश अन्य के धर्मशास्त्र का त्याग नहीं करते। अपितु वे शास्त्र को मध्यस्थ दृष्टि से स्वीकार करते हैं अर्थात् मध्यस्थ दृष्टि जीव तत्त्वातत्त्व का निर्णय करके ही योग्य को ग्रहण करते हैं और अयोग्य का त्याग करते हैं।

29. भावितात्मा

संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 72]

— *उपासकदशा - 1/76*

साधक संयम और तप से आत्मा को सतत भावित करता रहे।

30. एकाग्रता से लाभ

एगग्गचित्तेणं जीवे, मणगुत्ते संजमाराहए भवइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 83]

— *उत्तराध्ययन - 29/53*

एकाग्र चित्त से जीव मनोगुप्ति और संयम का आराधक हो जाता है। (जिसके चित्त में एकाग्रता नहीं होती, उसे कहीं भी सफलता नहीं मिलती।)

31. मनोनिग्रह-फल

मणगुत्तयाएणं जीवे एगऽग्गं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 83]

— *उत्तराध्ययन - 29/53*

मनोगुप्ति से जीव एकाग्र होता है।

32. आकृतिः मन का दर्पण

इंगिताकारैर्ज्ञेयैः क्रियाभिर्भाषिते च ।

नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यते अन्तर्गतं मनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 83]

— *मनुस्मृति 8/16*

अनुयोगद्वार प्रमाणाधिकार 143

आकृति से, इशारों से, चाल-ढाल (गति) से, चेष्टा से, वाणी/बोली से, नेत्र और मुँह के बदलते हुए भावों से मन में रहे हुए विचारों (बात) का पता लग जाता है।

33. मानवीय कर्म

चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्सताए कम्मं पगरेंति ।
तंजहा-पगइभद्दयाए, पगति विणीयाए,
साणुक्कोसयाए, अमच्छरियाए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 99]

— *स्थानांग - 4/4/4/373*

सहज सरलता, सहज विनम्रता, दयालुता और अमत्सरता-ये चार प्रकार के व्यवहार मानवीय कर्म हैं। (इनसे आत्मा मानवजन्म प्राप्त करती है)

34. मृदुता-फल

मद्दवयायेणं अणुस्सियत्तं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 104]

— *उत्तराध्ययन 29/49*

मृदुता से जीव अहंकार रहित हो जाता है।

35. पशुवत् 'मैं' 'मैं'

पुत्रो मे भ्राता मे, स्वजनो मे गृहकलत्रवर्गो मे ।
इति कृत मेमे शब्दं, पशुमिव मृत्युर्जनं हरति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 104]

— *आचारांग सटीक 1/2/1*

एवं आगमीय सूक्तावली पृ. 18

मेरा पुत्र, मेरा भाई, मेरे स्वजन, मेरा घर, मेरी पत्नी, मेरा परिवार आदि पशुवत् 'मैं' 'मैं' करता हुआ मनुष्य मानवजन्म हार जाता है।

36. तिरस्कार-वर्जन

न बाहिरं परिभवे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 106]

– ***दशवैकालिक 8/30***

दूसरों का तिरस्कार मत करो ।

37. ज्ञान में भी निरभिमान

सुयलाभे न मज्जेज्जा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 106]

– ***दशवैकालिक - 8/30***

श्रुतज्ञान प्राप्त होने पर भी अभिमान मत करो ।

38. पाप-जननी कौन ?

अदु इंखिणिया उपाविया ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 107]

– ***सूत्रकृतांग 1/2/2/2***

निन्दा पापों की जननी है ।

39. निरभिमानी मुनि

मुणी ण मिज्जइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 107]

– ***सूत्रकृतांग - 1/2/2/2***

मुनि अभिमान नहीं करता है ।

40. तिरस्कार से भ्रमण

जो परिभवइ परं जणं, संसारे परिवत्तई महं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 107]

– ***सूत्रकृतांग 1/2/2/2***

जो दूसरों का तिरस्कार करता है, वह संसार-अटवी में दीर्घकाल तक भटकता रहता है ।

41. एक बार मरण

एगे मरणे अंतिम सारीरियाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 108]

— *स्थानांग - 1/1/96 (26)*

मुक्त होनेवाली आत्माओं की वर्तमान देह का अंतिम मरण एकबार होता है । दूसरी बार नहीं ।

42. द्विविध मरण

सन्ति मे य दुवे ठाणा, अक्खाया मारणन्तिया ।
अकाममरणं चेव, सकाम मरणं तहा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 117]

— *उत्तराध्ययन 5/1*

तत्त्वज्ञ पुरुषों ने मरण दो प्रकार के बताए हैं - एक अकाममरण और दूसरा सकाममरण ।

43. पण्डित-मृत्यु

पंडियाणं सकामं तु उक्कोसेण सइं भवे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 117]

— *उत्तराध्ययन - 5/3*

पण्डितजनों की (सकाममरण) मृत्यु उत्कृष्टतः एक बार ही होती है ।

44. अज्ञानी-मृत्यु

बालाणं अकामं तु मरणं असइं भवे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 117]

— *उत्तराध्ययन - 5/3*

मूर्खों की मृत्यु बार-बार होती है ।

45. भौतिक दृष्टि

न मे दिट्ठे परे लोए, चक्खूदिट्ठा इमा रई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 118]

— ***उत्तराध्ययन* - 5/5**

अज्ञानी जन ऐसा कहते हैं कि परलोक तो हमने देखा नहीं हैं, किन्तु यह विद्यमान काम-भोग का आनन्द तो चक्षु-दृष्ट है अर्थात प्रत्यक्ष आँखों के सामने है ।

46. काम से संक्लेश

कामभोगाणुराएणं केसं संपडिवज्जइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 118]

— ***उत्तराध्ययन* 5/7**

काम-भोग से जीव क्लेश पाता है ।

47. अज्ञानी शोकाकुल

जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयइ ॥
एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चु-मुहं पत्ते अक्खे भग्गे व सोयई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 120]

— ***उत्तराध्ययन* 5/14/15**

जैसे-कोई गाड़ीवान् समतल राजपथ को जानता हुआ भी उसे छोड़कर विषम दुरुह मार्ग से चल पड़ता है और गाड़ी की धूरी टूट जाने के पश्चात शोकाकुल होता है, वैसे ही धर्म का उल्लंघन कर जो अज्ञानी अधर्म के कुमार्ग को स्वीकार कर लेता है । वह मृत्यु के मुख में पड़ने पर उसी प्रकार शोक करता है जिसप्रकार धूरी टूट जाने पर गाड़ीवान करता है ।

48. भय से संत्रस्त

तओ से मरणंतम्मि बाले संतस्सइ भया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 120]

— ***उत्तराध्ययन* - 5/16**

अज्ञानी जीव मरणान्त समय में भय से संत्रस्त होता है ।

49. अपेक्षा से श्रेष्ठ कौन ?

सन्ति एगेहिं-भिक्खूहिं गारत्था संजमुत्तरा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 121]

— *उत्तराध्ययन 5/20*

कई भिक्षुओं की अपेक्षा गृहस्थ संयम में श्रेष्ठ होते हैं ।

50. गृहस्थ बनाम साधु श्रेष्ठ

गारत्थेहिय सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 121]

— *उत्तराध्ययन - 5/20*

सभी गृहस्थों की अपेक्षा साधुगण संयम में श्रेष्ठ होते हैं ।

51. बाह्योपकरण रक्षक नहीं

चीरा जिणं निगिणिणं, जडि-संघाडि-मुंडिणं ।
एयाणि वि न तायंति, दुस्सीलं परियागतं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 121]

— *उत्तराध्ययन 5/21*

चीवर, मृगचर्म, नग्नता, जटाएँ, कन्था (चिथड़ों से बनी हुई गुदड़ी) और सिरमुंडन-ये सारे बाह्य उपकरण आचारहीन साधक की रक्षा नहीं कर सकते ।

52. सुव्रती

गिहवासोऽवि सुव्वओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 122]

— *उत्तराध्ययन 5/24*

धर्म-शिक्षा सम्पन्न गृहस्थ गृहवास में भी सुव्रती है ।

53. दिव्यगति

भिक्खाए वा गिहेत्थे वा सुव्वए कमति दिवं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 122]

— *उत्तराध्ययन - 5/22*

चाहे भिक्षु हो या गृहस्थ हो, जो सदाचारी है, वह देवगति पाता है।

54. आत्मा प्रसन्न कैसे ?

तुलिया विसेसमायाय दयाधम्मस्स खंतिए ।
विप्पसीएज्ज मेधावी, तहा भूएण अप्पणा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 123]

— *उत्तराध्ययन 5/30*

मेधावी साधक पहले अपने आपको तोले। उसके बाद बाल मरण से पण्डित मरण की विशेषता जानें और फिर सकाम मरण को स्वीकार कर दयाप्रधानधर्म क्षमादि गुणों के द्वारा अपनी आत्मा को प्रसन्न रखें।

55. अनुद्विग्न

न संतसंति मरणन्ते सीलवंता बहुस्सुआ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 123]

— *उत्तराध्ययन - 5/29*

बहुश्रुत ज्ञानी और सदाचारी साधक मृत्युकाल में भी उद्विग्न नहीं होते हैं।

56. धर्म

धम्ममायाणह ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 124]

— *आचारांग - 1/8/1/202*

धर्म को समझो।

57. कर्म-बन्धन से मुक्त

जे निव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं अणियाणा ते वियाहिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 124]

एवं [भाग 7 पृ. 494]

— *आचारांग - 1/4/3*

जो पाप-कर्मो से निवृत्त हैं, वे निदान रहित कर्म बन्धन के मूल से मुक्त कहे गए हैं ।

58. धर्म कहाँ ?

गामे वा अदुवा रण्णे, नेव गामे नेव रण्णे धम्ममाऽऽयाणह ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 124]

— ***आचारांग 1/8/1/202***

धर्म गाँव में होता है अथवा जंगल में ? वस्तुत: वह न तो गाँव में होता है और न ही जंगल में । वह तो आत्मा में है अर्थात् सम्यग आचरण को धर्म जानो ।

59. जीव-हिंसा

जे वेऽन्ने एएहिं काएहिं दंडं समारंभंति,
तेसिं पि वयं लज्जामो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 124]

— ***आचारांग - 1/8/1/203***

यदि कोई अन्य भिक्षु भी जीव-निकाय की हिंसा करते हैं तो उनके इस जघन्य कार्य से भी हम लज्जित होते हैं ।

60. देह की पुष्टि और क्षीणता

आहारोवचया देहा परिसहा पभंगुरा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 126]

— ***आचारांग - 1/8/3/210***

शरीर आहार से बढ़ता है; पुष्ट होता है और परिषहों से क्षीण होता है ।

61. मैं अकेला

एगे अहमंसि, न मे अत्थि कोइ,
नयाऽहमवि कस्सवि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 127]

— ***आचारांग - 1/8/6/222***

मैं एक हूँ-अकेला हूँ। न कोई मेरा है, और न मैं किसी का हूँ।

62. आत्मा एकाकी

एगागिणमेव अप्पाणं समभिजाणिज्जा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 127]

– ***आचारांग - 1/8/6/222***

अपनी आत्मा को एकाकी ही अनुभव करें।

63. जीवन अनाकांक्षा

जीवियं नाभिकंखेज्जा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 130]

– ***आचारांग - 1/8/8/19***

पण्डित साधक जीने की आकांक्षा नहीं करें।

64. मृत्यु से निष्काम

मरणं नोवि पत्थए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 130]

– ***आचारांग - 1/8/8/19***

पंडित साधक मृत्यु की भी कामना नहीं करें।

65. तितिक्षा

अप्पाहारे तितिक्खए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 130]

– ***आचारांग - 1/8/8/18***

साधक अल्पाहार करता हुआ सहनशीलता-तितिक्षाभाव रखें।

66. कषाय-कृशता

कसाये पयणू किच्चा ।

– ***श्री अभिधान राजेन्द्र कोष*** *[भाग 6 पृ 130]*

– ***आचारांग 1/8/8/18***

कषायों को पतला (कृश) करें।

67. मृत्यु कला के सम्यग्वेत्ता

दुविहं पि विइत्ताणं, बुद्धा धम्मस्स पारगा ।
अनुपुव्वीइ संखाए, आरम्भा य तिउट्टई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 130]
— ***आचारांग*** - *1/8/8/17*

धर्म के सम्यग्वेत्ता प्रबुद्ध साधक बाह्य और आभ्यन्तर तप का आचरण करके अथवा पंडित और अपण्डित द्विविध मरणों समझ कर यथाक्रम से संयम का पालन करते हुए मृत्यु के समय को जान कर शरीर पोषण रूप आरम्भों से मुक्त होते हैं ।

68. धर्मवेत्ता

बुद्धा धम्मस्स पारगा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 130]
— ***आचारांग*** - *1/8/8/17*

प्रबुद्ध पुरुष धर्म के पारगामी होते हैं ।

69. जीवन-मृत्यु में अनासक्त

दुहतो वि ण सज्जेज्जा जीविते मरणे तहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 130]
— ***आचारांग*** - *1/8/8*

साधक जीवन और मृत्यु दोनों में ही आसक्त न हो ।

70. अध्यात्म-अन्वेषण

अंतो बहिं विउस्सिज्ज अज्झत्थसुद्धमेसए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 131]
— ***आचारांग*** - *1/8/8/20*

बाह्याभ्यन्तर ममत्व का विसर्जन कर साधक विशुद्ध अध्यात्म का अनुसंधान करें ।

71. भिक्षु कैसा हो ?

मज्झत्थो निज्जरापेही समाहिमणुपालए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 131]

— *आचारांग - 1/8/8/20*

मध्यस्थ अर्थात् समभाव में स्थित और निर्जराकांक्षी भिक्षु समाधि का अनुपालन करें ।

72. ग्रन्थियों से मुक्त

गंथेहिं विवित्तेहिं, आउकालस्सपारए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 131]

— *आचारांग - 1/8/8/26*

साधक को बाह्य और अन्तरंग सभी ग्रन्थियों से मुक्त होकर आयुष्यकाल (जीवन-यात्रा) पूर्ण करना चाहिए ।

73. मर्यादा का अनुलंघन

नाइवेलं उवचरे माणुस्से हि वि पुट्ठेव ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 131]

— *आचारांग 1/8/8/23*

मुनि मनुष्यकृत (अनुकूल-प्रतिकूल) उपसर्गों से आक्रान्त होने पर भी मर्यादा का उल्लंघन न करें ।

74. मुनि आचार

इंदिएहिं गिलायन्तो, समियं आहरे मुणी ।
तहा विसे अगरिहे, अचले जे समाहिए ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 132]

— *आचारांग - 1/8/8/29*

इन्द्रियों से क्षीण होने पर भी मुनि समता धारण करें । यदि वह अचल और समाहित है तो परिमित स्थान में शारीरिक चेष्टा करते हुए भी निंद्य नहीं है ।

75. नश्वर काम

भेउरेसु ण रज्जेज्जा, कामेसु बहुयरेसु वा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 133]

— *आचारांग - 1/8/8/38*

विविध प्रकार के क्षणभंगुर विपुल काम-भोगों में लिप्त न हो।

76. देहासक्ति-त्याग

वोसिरे सव्वसो कायं, न मे देहे परीसहा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 133]

— *आचारांग - 1/8/8/36*

शरीर का सब तरह से मोह छोड़ दें। परिषह उपस्थित होने पर विचार करे कि मेरी देह पर कोई परिषह है ही नहीं।

77. इच्छा-लोभ-वर्जन

इच्छालोभं न सेविज्जा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 133]

— *आचारांग - 1/8/8/38*

इच्छा और लोभ का सेवन नहीं करना चाहिए।

78. अनासक्त जीवन-यात्रा

सव्वट्ठेहिं अमुच्छिए आउकालस्स पारए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 134]

— *आचारांग - 1/8/8/40*

साधक सभी विषयों में मूर्च्छित नहीं होता हुआ (अनासक्त) जीवन-यात्रा को पूर्ण करें।

79. अविश्वास किसमें ?

दिव्वं मायं न सद्दहे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 134]

— *आचारांग - 1/8/8/39*

भिक्षु दिव्य माया पर भी विश्वास नहीं करें।

80. तितिक्षा

तितिक्खं परमं नच्चा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 134]

— ***आचारांग - 1/8/8/40***

तितिक्षा को सर्वश्रेष्ठ समझो ।

81. सशल्य मृत्यु से भ्रमण

रागदोसाभिहया, ससल्लमरणं मरंति जे मूढ ।
ते दुक्खसल्लबहुला, भमंति संसार कंतारे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 135]

— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक 51***

राग-द्वेष से अभिभूत जो मूढ़ मनुष्य शल्यपूर्वक मरते हैं, वे विविध दुःखरूप शल्यों से पीड़ित होकर संसार रूप अटवी में परिभ्रमण करते हैं ।

82. आलोचना से हल्कापन

कयपावो वि मणूसो आलोइय निंदिय गुरुसगासे ।
होइ अइरेग लहुओ, ओहरिय भरुव्व भारवहो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 136]

— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक - 102***

जैसे-भारवाहक बोझ उतार कर अत्यन्त हल्कापन महसूस करता है, वैसे ही पापी मनुष्य भी गुरु के समीप अपने दुष्कृत्यों की आलोचना-निंदा कर पाप से हल्का हो जाता है ।

83. आराधक नहीं

सुहुमं पि भावसल्लं अणुद्धरित्ता उ जो कुणइ कालं ।
लज्जाइ गारवेण य न हु सो आराहओ भणिओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 136]

— ***मरणसमाधिप्रकीर्णक 98***

जो लज्जा अथवा गर्ववश सूक्ष्म भी भावशल्य की शुद्धि नहीं करता है और शल्य सहित ही मर जाता है तो वह आराधक नहीं माना जाता है ।

84. भावशल्य से भ्रमण

जं कुणइ भावसल्लं, अणुद्धरियं उत्तमट्ठकालम्मि ।
दुल्लहं बोहियतं, अणंत संसारियत्तं च ॥

तो उद्धरंति गारवरहिया, मूल पुणब्भवलयाणं ।
मिच्छादंसण सल्लं मायासल्लं नियाणं च ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 136]
— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक - 111-112***

अन्तिम आराधना काल में यदि भावशल्य की शुद्धि नहीं की जाय, तो वह शल्य आत्मा का बड़ा अहित करता है । फलत. आत्मा को बोधि दुर्लभ हो जाती है और उसे दीर्घकाल तक संसार भ्रमण करना पड़ता है । अतएव आत्मार्थी पुरुष गारव का त्याग कर भवलता के मूल मिथ्यादर्शन, मायाशल्य और निदानशल्य की शुद्धि करते हैं ।

85. आनुपूर्वी से आलोचना

जं पुव्वं तं पुव्वं जहाणुपुव्विं जहक्कम्मं सव्वं ।
आलोइज्ज सुविहिओ कमकालविहिं अभिंदंतो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 136]
— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक 105***

सुविहित पुरुष (श्रेष्ठ आचारवाले) को क्रम और कालविधि का भेदन नहीं करते हुए, लगे हुए दोषों की क्रमश आलोचना करनी चाहिए । जो दोष पहले लगा हो उसकी आलोचना पहले और बाद में लगे दोषों की आलोचना बाद में करें । इसतरह आनुपूर्वी से आलोचना करनी चाहिए ।

86. अनालोचक, अनाराधक

लज्जाए गारवेण य, जे नाऽऽलोयंति गुरुसगासम्मि ।
धम्मं तं पि सुयसमिद्धा न हु ते आराहगा हुंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 136]
— ***मरणसमाधिप्रकीर्णक - 103***

जो लज्जावश अथवा गर्व के कारण गुरु के समीप अपने दोषों की आलोचना नहीं करते, वे श्रुत से अतिशय समृद्ध होते हुए भी आराधक नहीं हैं ।

87. ज्ञान बिन चारित्र नहीं

एसा जिणाण आणा, नऽत्थि चरित्तं विणा नाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 137]

— ***मरणसमाधि - 138***

ज्ञान के बिना चारित्र (आचरण) नहीं होता, ऐसी जिनाज्ञा है ।

88. ज्ञानयुक्त आचरण

नाणसहियं चरित्तं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 137]

— ***मरणसमाधि - 138***

चारित्र ज्ञानपूर्वक होता है ।

89. अन्योन्याश्रित

नाणेण विणा करणं, न होइ नाणंऽपि करणहीणं तु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 137]

— ***मरणसमाधि - 137***

ज्ञानरहित क्रिया और क्रिया रहित ज्ञान भी नहीं होता ।

90. वही अनशन श्रेष्ठ

सो नाम अणसण तवो, जेण मणोऽमंगलं न चिंतेइ ।
जेण न इंदियहाणी, जेण य जोगा न हायंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 137]

— ***मरणसमाधि - 134***

वह अनशन तप श्रेष्ठ है, जिससे कि मन अमंगल न सोचे । इन्द्रियों की हानि न हो और नित्य प्रति की योगधर्म की क्रियाओं में भी विघ्न न आएँ ।

91. बहुश्रुत-दर्शन चन्द्रवत्

किं ? इत्तो लट्ठयरं, अच्छेरयरं व सुन्दरतरं वा ।
चंदमिव सव्वलोगा, बहुस्सुयमुहं पलोएंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 137]

— ***मरणसमाधि - 144***

इससे बढ़कर मनोहर सुन्दर और आश्चर्यकारक क्या होगा ? कि लोग बहुश्रुत के मुख को चन्द्रदर्शन की तरह देखते रहते हैं ।

92. दुःखक्षय किससे ?

नाणेण य करणेण य, दोहि वि दुक्खखयं होइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 137]

— *मरणसमाधि 147*

ज्ञान और चारित्र-इन दोनों की साधना से ही दुःख का क्षय होता है ।

93. स्वाध्याय, परम तप

नवि अत्थि नऽवि य होहि ।
सज्झाय समं तवोकम्मं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 137]
एवं [भाग 7 पृ. 1144]

— *बृहत्कल्पभाष्य 1169*

स्वाध्याय के समान अन्य कोई तप न अतीत में कभी हुआ, न वर्तमान में कहीं है; और न ही भविष्य में कभी होगा ।

94. फिर भी आराधक

एवं उवट्ठियस्सवि आलोए उ विशुद्धभावस्स ।
जं किंचि वि विस्सरियं सहसक्कारेण वा चुक्कं ॥
आराहओ तहवि सो गारवपरिकुंचणामय विहूणो ।
जिणदेसियस्स धीरो सद्दहगो मुत्तिमग्गस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 137]

— *मरणसमाधिप्रकीर्णक - 121-122*

विशुद्ध भावपूर्वक आलोचना के लिए उपस्थित व्यक्ति आलोचना करते हुए यदि स्मरण-शक्ति की कमजोरी के कारण अथवा जल्दबाजी में किसी दोष की आलोचना करना भूल जाय, फिर भी माया, मद एवं गारव से रहित वह धैर्यशाली पुरुष आराधक ही है और वह जिनोपदिष्ट मुक्ति-मार्ग का श्रद्धावान् ही माना जाएगा ।

95. ज्ञान-शिक्षण

नाणं सुसिक्खियव्वं, नरेण लद्धूण दुल्लहं बोहिं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 137]

— *मरणसमाधि 139*

दुर्लभ-बोधि प्राप्त करके मनुष्य को अच्छी तरह ज्ञान सीखना चाहिए।

96. कषाय विजय उपाय

कोहं खमाइ माणं, मद्दवया अज्जवेण मायं च ।
संतोसेण व लोहं, निज्जिण चत्तारि वि कसाए ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 138]

— *मरणसमाधि प्रकीर्णक 189*

क्रोध को क्षमा से, मान को मृदुता से, माया को ऋजुता से और लोभ को सन्तोष से जीतें। इसप्रकार चारों कषायों को जीतना चाहिए।

97. न सुख, न दुःख

को दुक्ख पाविज्जा ? कस्सय दुक्खेहिं विम्हओ हुज्जा ।
को व न लभिज्ज मुक्खं ? रागद्दोसा जइ न हुज्जा ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 139]

— *मरणसमाधि प्रकीर्णक 139*

यदि रागद्वेष नहीं हो तो संसार में न कोई दुःखी होगा और न कोई सुख पाकर ही विस्मित होगा, बल्कि सभी मुक्त हो जाएँगे।

98. अहितकर्ता, रागद्वेष

नवि तं कुणइ अमित्तो सुट्ठुवि य विराहिओ समत्थोवि ।
जं दो वि अनिग्गहिआ, करंति रागो य दोसो य ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 139]

— *मरणसमाधि प्रकीर्णक 198*

समर्थ शत्रु का भी कितना ही विरोध क्यों न किया जाय, फिर भी वह आत्मा का उतना अहित नहीं करता जितना कि वश में नहीं किए हुए राग-द्वेष करते हैं।

99. त्रिविध-क्षमापना

रागेण व दोसेण व अहवा अवायन्नुणा पडिनिवेसेणं।
जो मे किंचि वि भणिओ तमहं तिविहेण खामेमि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 139]
— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक 214***

राग-द्वेष, अकृतज्ञता अथवा आग्रहवश मैंने जो कुछ भी कहा है, उसके लिए मैं मन-वचन और काया से सभी से क्षमा चाहता हूँ।

100. जिन-वचन में अप्रमत्त

जिणवयणम्मि गुणागर ! खणमवि मा काहिसि पमायं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 139]
— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक - 205***

हे गुणागार ! तू जिनवचन में क्षणभर का भी प्रमाद मत कर।

101. अकेला ही चतुर्गति प्रवास

इक्को जायइ मरइ, इक्को अणुहवइ दुक्कय विवागं।
इक्को अणुसरइ जीओ, जरमरण चउग्गइ गुविलं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 140]
— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक 243***

जीव अकेला ही जन्ममरण करता है, अकेला ही दुष्कृत-विपाक का अनुभव करता है और अकेला ही जन्ममरण रूप गहन चतुर्गति में परिभ्रमण करता है।

102. ऐहिक सुख से अतृप्ति

न हु सक्को तिप्पेउं, जीवो संसारिय सुहेहिं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 140]
— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक 250***

सांसारिक सुखों से जीव तृप्त नहीं हो सकता।

103. श्रद्धा से आचरण

जेण विरागो जायइ, तं तं सव्वाऽऽयरेण करणिज्जं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 141]
— *मरणसमाधि प्रकीर्णक 296*
एव महाप्रत्याख्यान 106

जिस किसी भी क्रिया से वैराग्य की जागृति होती हो, उसका पूर्ण श्रद्धा के साथ आचरण करना चाहिए।

104. धैर्य से मृत्यु

धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेणऽवि अवस्समरियव्वं ।
तम्हा अवस्समरेण, वरं खु धीरत्तेण मरिउं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 142]
— *आतुर प्रत्याख्यान 64*

धीर पुरुष को भी एकदिन अवश्य मरना है और कायर को भी। जब दोनों को ही मरना है तो अच्छा है कि धीरता (शान्त-भाव) से ही मर जाय।

105. ममत्त्व-त्याग

छिंद ममत्तं सुविहिय ! जइ इच्छसि मुच्चिउ दुहाणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 144]
— *मरणसमाधिप्रकीर्णक 405*

हे सुविहित ! यदि तू दुःखों से मुक्त होना चाहता है, तो ममत्त्व को दूर कर।

106. सर्वत्र अकेला ही अकेला

इक्को करेइ कम्मं, फलमवि तस्सेक्कओ समणुहवइ ।
इक्को जायइ मरइ य, परलोयं इक्कओ जाइ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 148]
— *मरणसमाधिप्रकीर्णक - 586*

आत्मा अकेला जन्म लेता है, अकेला मरता है, अकेला ही कर्म करता है, उसका फल भी अकेला ही अनुभव करता है और परलोक में भी अकेला ही जाता है।

107. अकेला दुःख-भोक्ता

सयणस्स य मज्झगओ, रोगाभिहओ किलिस्सइ इहगो ।
सयणोऽविय से रोगं, न विरिंचइ नेव नासेइ ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 148]
– ***मरणसमाधिप्रकीर्णक*** *584*

इस संसार में रोग से पीड़ित जीव स्वजनों के बीच रहा हुआ अकेला ही क्लेश पाता है, किन्तु स्वजनवर्ग भी उसके रोग को न तो दूर कर सकते हैं और न ही समाप्त ।

108. कोई रक्षक नहीं

पुत्ता-मित्ता य पिया, सयणो बंधवजणो अ अत्थो य ।
न समत्था ताएउं, मरणा सिंदाऽवि देवगणा ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 148]
– ***मरणसमाधिप्रकीर्णक*** *583*

माता-पिता, पुत्र, मित्र, स्वजन-बंधुजन और धन-ये सब व्यक्ति की रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं और मरने पर देवगण भी उसे अपनी आशीष से बचा नहीं सकते ।

109. आत्म-चिन्तन

अन्नं इमं सरीरं अन्नोऽहं बंधवाऽवि मे अन्ने !

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 148]
– ***मरणसमाधिप्रकीर्णक*** *589*

यह शरीर अन्य है, मैं अन्य हूँ और ये बन्धुजन भी अन्य हैं ।

110. परमपद के निकट कौन ?

जह जह दोसोवरमो, जह जह विसएसु होइ वेरग्गं ।
तह-तह वियाणाहि, आसन्नं से पयं परमं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 149]
– ***मरणसमाधिप्रकीर्णक*** *- 632*

साधक जैसे-जैसे द्वेष से दूर हटता जाता है और जैसे-जैसे उसे विषयों के प्रति वैराग्य होता जाता है, त्यों-त्यों वह मोक्ष के अधिकाधिक निकट पहुँचता जाता है ।

111. पाप-जहर

न हु पावं हवइ हियं, विसं जहा जीवियऽत्थिस्स ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 149]

— ***मरणसमाधिप्रकीर्णक*** *614*

जैसे जीवितार्थी के लिए जहर हितकर नहीं होता, वैसे ही कल्याणार्थी के लिए पाप हितकर नहीं है ।

112. ज्ञान-लगाम

हुंति गुणकारगाइं, सुयरज्जूहिं धणियं नियमियाइं ।
नियगाणि इंदियाइं, जइणो तुरगा इव सुंदता ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 149]

— ***मरणसमाधिप्रकीर्णक*** *623*

ज्ञान की लगाम से नियन्त्रित होने पर अपनी इन्द्रियाँ भी वैसे ही संयमित हो जाती हैं । जैसे-लगाम से नियन्त्रित होने पर तेज दौड़नेवाला घोड़ा ।

113. अनर्थ-मूल

अत्थोमूलं अणत्थाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 149]

— ***मरणसमाधिप्रकीर्णक*** *- 703*

अर्थ अनर्थों का मूल है ।

114. विचित्र मानव जाति

माणुसजाई बहु विचित्ता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 150]

— ***मरणसमाधि प्रकीर्णक*** *- 641*

मानव-जाति बहुत विचित्र हैं ।

115. दुःखोपशमन में असमर्थ

नऽवि माया नऽवि य पिया, न पुत्तदारा न चेव बंधुजणो ।
न वि य धणं न वि धन्नं, दुक्खमुइन्नं उवसमेंति ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 150]
– ***मरणसमाधिप्रकीर्णक 646***

इस संसार में माता-पिता, पुत्र, स्त्री, बंधुजन और धनधान्य भी जीव के उदय में आए हुए दु:ख का उपशमन नहीं कर सकते ।

116. अत्राण-अशरण

अम्मा पियरो भाया, भज्ज पुत्ता सरीर अत्थो य ।
भवसागरम्मि घोरे, न हुंति ताणं च सरणं च ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 150]
– ***मरणसमाधिप्रकीर्णक 645***

इस घोर संसार-सागर में माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्र, शरीर और धन-इनमें से कोई भी जीव को त्राण और शरण नहीं दे सकते ।

117. किसे प्रयोजन नहीं ?

जस्स न छुहा न तण्हा, न य सी उण्हं न दुक्खमुक्किट्ठं ।
न य असुइयं सरीरं, तस्सऽसणाईसु किं कज्जं ?

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 150]
– ***मरणसमाधिप्रकीर्णक - 655***

जिसकी भूख-तृष्णा मिट गई है, जिसे उत्कृष्ट दु:ख नहीं है, जिसकी सर्दी-गर्मी समाप्त हो चुकी है और जिसका शरीर अपवित्र नहीं रहा है, उसे भोजन-स्नानादि से क्या प्रयोजन ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं ।

118. वैर-विस्मृति

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर-परित्यागः ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 181]
एवं [भाग 6 पृ. 1460]
– ***पातंजलयोगदर्शन 2/35***

अहिंसा की पूर्णसाधना होने पर साधक के निकटस्थ प्राणियों में परस्पर वैर-भाव नहीं रहता ।

119. ज्ञान, परममित्र

सज्ज्ञानं परमं मित्रं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 191]

— ***हारिभद्रीय टीका 26***

सद्ज्ञान श्रेष्ठ मित्र है ।

120. अज्ञान, महाशत्रु

अज्ञानं परमो रिपुः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 191]

— ***हारिभद्रीय टीका 26***

अज्ञान महाशत्रु है ।

121. संतोष, श्रेष्ठ सुख

संतोषः परमं सौख्यं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 191]

— ***हारिभद्रीय टीका 26***

संतोष श्रेष्ठ सुख है ।

122. आकाङ्क्षा, महादुःख

आकाङ्क्षा दुःखमुत्तमम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 191]

— ***हारिभद्रीय टीका 26***

आकाङ्क्षा (महत्त्वाकांक्षा) महादुःख है ।

123. मूर्ख, परदोष-परायण

किं एत्तो कट्ठयरं जं मूढो खाणुगंमि अप्फिडिओ ।
खाणुस्स तस्स रूसइण अप्पणो दुप्पओगस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 192]

— आवश्यक निर्युक्ति 918

मूर्ख व्यक्ति किसी ठूठ से टकराने पर उस ठूठ पर ही क्रोधित होता है, किन्तु अपनी दूषित प्रवृत्ति पर क्रोध नहीं करता।

124. कामान्ध-परिणाम

ब्रह्मालूनशिरोहरिदृशिसरुक् व्यालुप्त शिश्नोहरः ।
सूर्योऽप्युल्लिखितोऽनलोऽप्यखिलभुक्सोमः कलंकांकितः ॥
स्वरनाथोऽपि विसंस्थूलः खलु वपुः संस्थैरूपस्थैः कृतः ।
सन्मार्ग स्खलनाद् भवन्ति विपदः प्रायः प्रभूणामपि ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 193]
— अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका सटीक

कामान्ध होकर ब्रह्माजी ने अपना शिर कटवाया विष्णु नेत्र-रोगी बने, महादेवजी का शिरच्छेदन हुआ, सूर्य छीला गया, अग्नि सर्वभक्षी बना, चन्द्रमा सकलंक बना तथा इन्द्र का शरीर सहस्र भाग युक्त बना। सच है सन्मार्ग से पतित हो जाने पर चाहे कितने ही समर्थ व्यक्ति क्यों न हो, वे प्रायः विपदग्रस्त हो ही जाते हैं।

125. तृष्णा का करिश्मा

तृष्णे ! देवि ! विडम्बनेयमखिलालोकस्य युष्मत्कृता।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 193]
— अन्ययोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका सटीक

हे तृष्णादेवी ! यह विडम्बना ही है कि तुमने इस सम्पूर्ण लोक को अपने अधीन कर लिया है।

126. श्रावक-स्वरूप

श्रद्धालुतां श्राति पदार्थचिन्तनाद्,
धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम् ।
किरत्यपुण्यानि सुसाधु सेवना,
दद्यापि तं श्रावकमाहुरञ्जसा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 219]
— ***श्राद्धविधि,*** *3/72 पृ.*
धर्मसंग्रह *2/121*

'श्रा' अर्थात् श्रद्धा-जो तत्त्वार्थ चिन्तन द्वारा श्रद्धालुता को सुदृढ़ करता है। 'व' अर्थात् विवेक-जो निरंतर सत्पात्रों में धन रूप बीज बोता है 'क' अर्थात् क्रिया-जो सुसाधु की सेवा करके पाप-धूलि को दूर फेंकता रहता है, अतः उसे उत्तम पुरुषोंने 'श्रावक' कहा है।

127. दुःख-भोक्ता कौन ?

गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं, माराओ मारं,
णरगाओ णरगं चंडे थद्धे चवले पणियाविभवइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 243]
— ***सूत्रकृतांग*** *2/2/25*

जाति-कुल आदि का अभिमान करनेवाला, चपल एवं रौद्र परिणामी व्यक्ति एक गर्भ से दूसरे गर्भ को, एक जन्म से दूसरे जन्म को, एक मरण से दूसरे मरण को और एक नरक से दूसरे नरक में दुःखों का भोक्ता बनता है।

128. समय चूकि पुनि का पछताने !

इय दुल्लह लंभं माणुसत्तणं, पाविउण जो जीवो ।
न कुणइ पारत्तहियं, सो सोयइ संकमणकाले ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 248]
— ***आवश्यकसूत्र*** *836*

जो जीव दुर्लभता से प्राप्त इस मानवता को पाकर इस जन्म में परहित या पारलौकिक धर्म नहीं करता, उसे मृत्यु के समय पछताना पड़ता है।

129. कायर कौन ?

तं तह दुल्लह लंभं, विज्जुलया चंचलं माणुसत्तं ।
लद्धूण जो पमायइ, सो कापुरिसो न सप्पुरिसो ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 248]

– ***आवश्यकनिर्युक्ति 840***

बिजली की चमक के समान चंचल दुर्लभ मनुष्यत्व को प्राप्त करके भी जो व्यक्ति प्रमाद का सेवन करता है, वह कायर पुरुष है, न कि सत्पुरुष ।

130. मातृ-गौरव

उपाध्यायान् दशाचार्यः, आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 251]

– ***मनुस्मृति 2/145***

दस अध्यापकों से एक आचार्य महान् है, सौ आचार्यों से बढ़कर एक पिता और हजार पिताओं से एक माता महान हैं ।

131. माया-मृषा त्याज्य

अणुमायं पि मेहावी, मायामोसं विवज्जए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 254]

– ***दशवैकालिक - 5/2/49***

आत्मविद् साधक अणुमात्र भी माया-मृषा (दंभ और असत्य) का सेवन न करे ।

132. माया से सरलता

माया विजएणं उज्जुभावं जणयइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 255]

– ***उत्तराध्ययन 29/69***

माया को जीत लेने से ऋजुता (सरलभाव) प्राप्त होती है ।

133. मिथ्यात्व-स्वरूप

अदेवे देवबुद्धि र्या, गुरुधीरगुरौ च या ।
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 274]

– *योगशास्त्र 2/3*

जिसमें देवों के गुण न हो, उसमें देवत्व बुद्धि, गुरु के गुण न हो, उसमें गुरुत्व बुद्धि और अधर्म में धर्मबुद्धि रखना मिथ्यात्व है। सम्यक्त्व से विपरीत होने के कारण यह 'मिथ्यात्व' कहलाता है।

134. समता से मुक्ति

आ-संबरो अ सेयंबरो अ बुद्धो य अहव अन्नो वा ।
समभावभाविअप्पा, लहेइ मुक्खं न संदेहो ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 276]

– *सम्बोधसत्तरि - 2*

व्यक्ति चाहे दिगम्बर हो या श्वेताम्बर हो, बौद्ध हो या अन्य बौद्धेतर क्यों न हो, जबतक उसमें समताभाव की प्राप्ति नहीं होती तबतक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। समता भाव प्राप्त होते ही अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

135. सूर्य छिपे नहीं, बादल छाये

सुट्ठुवि मेहसमुदये, होइ पहा चंदसूराणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 277]

– *नंदीसूत्र 75*

घने मेघावरणों के भीतर भी चन्द्र-सूर्य की प्रभा कुछ-न-कुछ प्रकाशमान रहती ही है।

136. मिथ्याचार से दूर

बाह्येन्द्रियाणि संयम्य, यः आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा, मिथ्याचारः स उच्यते ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 278]

– *भगवद्गीता - 3/6*

हे अर्जुन ! वे व्यक्ति मिथ्याचारी दंभी कहे गए हैं, जो बाह्य रूप से इन्द्रियों का दमन कर संयम का दिखावा करते हैं और मन से इन्द्रिय-विषय-भोगों का स्मरण करते हैं। ऐसे मूढ़ बुद्धि व्यक्ति इन्द्रियों के ज्ञान में विमूढ़ हैं। इन्द्रियाँ ऐसे व्यक्ति को ही विषयों की ओर आसक्त कर सकती हैं। अत. इसप्रकार के मिथ्याचार से दूर रहना ही सच्चे संयमी का लक्षण है।

137. परमोत्कृष्ट योगबीज

जिनेषु कुशलचित्तं, तन्नमस्कार एव च ।
प्रणमादि च संशुद्धं; योगबीजमनुत्तमम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 283]
– *योगदृष्टिसमुच्चय 23 (द्वा. 21 द्वा.)*

अर्हन्तों के प्रति शुभभावमय चित्त, उन्हें नमस्कार तथा मानसिक, वाचिक और कायिक शुद्धिपूर्ण नमन आदि भक्ति-भावमय प्रवृत्ति परमोत्कृष्ट योगबीज हैं।

138. मूर्ख कौन ?

शाठ्येन मित्रं कलुषेण धर्मं, परावमानेन समृद्धिभावम् ।
सुखेन विद्यां परुषेण नारीं, वाञ्छन्ति ये नूनमपंडितास्ते ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 285]
– *नराभरण - 6*

धूर्तता से मित्रता, कलुषता से धर्म, दूसरे के अपमान से सम्पत्ति सुख से विद्या और कठोरता से नारी को, जो प्राप्त करना चाहते हैं, वे मूर्ख हैं।

139. जैसा संग वैसा रंग

जो जारिसेण मित्तीं, करेइ अचिरेण [सो] तारिसो होइ ।
कुसुमेहिं सह वसन्ता, तिलावि तग्गंधिया हुंति ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 285]
– *आवश्यकबृहद्वृत्ति 3 अध्ययन*

जो जैसी मित्रता करता है वह शीघ्र ही वैसा ही हो जाता है। जैसे फूलों के साथ रहने पर तिल भी उसके समान गंधवाले हो जाते हैं।

140. जाना है एकदिन

चइत्ताणं इमं देहं, गन्तव्वमवसस्स मे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 294]

— ***उत्तराध्ययन - 19/16***

इस शरीर को छोड़कर एकदिन मुझे अवश्य जाना है ।

141. दुःख भाजन शरीर

दुक्ख केसाण भायणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 294]

— ***उत्तराध्ययन - 19/12***

यह शरीर दुःखों और क्लेशों का भाजन है ।

142. अशाश्वत-निवास

असासया वासमिणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 294]

— ***उत्तराध्ययन - 19/12***

यह शरीर आत्मा का अशाश्वत निवासस्थान है ।

143. क्षणभर भी आनंद नहीं !

माणुसत्ते असारम्मि, वाहि-रोगाण आलए ।
जरा-मरण घत्थम्मि, खणं पि न रमामहं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 294]

— ***उत्तराध्ययन - 19/14***

यह मनुष्य-शरीर असार है, व्याधि और रोगों का घर हैं तथा जरा व मृत्यु से ग्रस्त हैं । अतः इसमें मुझे एक क्षण भी आनन्द नहीं मिल रहा है ।

144. पाथेय बिन दुःखी

अद्धाणं जो महंतं तु, अप्पाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो दुही होई, छुआ तण्हाइ पीडिओ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 294]

— *उत्तराध्ययन 19/18*

जो पथिक जीवन की इस लम्बी यात्रा में बिना पाथेय लिए लम्बे मार्ग पर चल देता है, वह आगे जाता हुआ भूख और प्यास से पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी होता है।

145. भोग-परिणाम, दुःखद

अम्मतायए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबंध दुहावहा ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 294]

— *उत्तराध्ययन 19/12*

हे माता-पिता ! मैंने भोग भोग लिए हैं। ये भोगे हुए भोग विषफल के समान हैं, अन्त में कटुफल देनेवाले हैं और निरन्तर दुःखों को लानेवाले हैं।

146. दुःखमय संसार

अहो दुक्खो हु संसारो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 294]

— *उत्तराध्ययन - 19/15*

निश्चय ही यह संसार चारों ओर से दुःख ही दुःख से भरा है।

147. परिणाम दुःखद

जह किंपाग फलाणं, परिणामो ण सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुंदरो ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 294]

— *उत्तराध्ययन - 19/17*

जैसे किंपाकवृक्ष के फलों का अन्तिम परिणाम सुन्दर नहीं होता, वैसे ही भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता।

148. दुःख ही दुःख

जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 294]

— ***उत्तराध्ययन - 19/15***

जन्म दु:ख रूप है, बुढ़ापा, रोग और मृत्यु भी दु:ख रूप है। अरे ! इस संसार में चारों ओर दु:ख ही दु:ख है। जहाँ प्राणी निरन्तर क्लेश पाते रहते हैं।

149. शरीर कैसा ?

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 294]

— ***उत्तराध्ययन 19/12***

यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है, और अपवित्र वस्तुओं से ही यह उत्पन्न हुआ है।

150. पानी केरा बुलबुला

असासए सरीरम्मि, रइं नोवलभामहं ।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेण बुब्बुय-सन्निभे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 294]

— ***उत्तराध्ययन 19/13***

यह शरीर पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है और पहले या पीछे कभी भी इसे छोड़ना ही होगा। मेरी इस अशाश्वत शरीर के प्रति तनिक भी आसक्ति नहीं है।

151. निशिभोजन-त्याग दुष्कर

चउव्विहेऽवि आहारे, राईभोयणं वज्जणा ।
सन्निही संचओ, चेव वज्जेयव्वो सुदुक्करं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— ***उत्तराध्ययन 19/31***

अन्न आदि चतुर्विध आहार का रात्रि में सेवन नहीं करना चाहिए तथा दूसरे दिन के लिए भी रात्रि में खाद्य पदार्थों का संग्रह करना निषिद्ध हैं। अत: रात्रिभोजन का त्याग वास्तव में बड़ा दुष्कर है।

152. श्रमणत्व दुष्कर

जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करं मंदरोगिरि ।
तहा निहुअ नीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 295]
— ***उत्तराध्ययन 19/42***

जैसे-मेरु-पर्वत को तराजू मे तोलना बहुत कठिन कार्य है, वैसे ही निश्चल और नि शक होकर श्रमणत्व का पालन करना कठिन है ।

153. दमन दुस्तर

जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणायरो ।
तहा अणुवसन्नेणं, दुक्करं दमसायरो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 295]
— ***उत्तराध्ययन 19/43***

जैसे-भुजाओ से समुद्र को तैरना अतिकठिन है, वैसे ही अनुपशान्त व्यक्ति के लिए इन्द्रिय-दमन रूपी समुद्र को पार करना अतिकठिन है ।

154. श्रमणत्व, अग्निपानवत्

जहा अग्गिसिहादित्ता, पाउं होइ सुदुक्करं ।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण समणंत्तणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 295]
— ***उत्तराध्ययन 19/40***

जैसे-प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखा का पान करना अति दुष्कर है, वैसे ही युवावस्था मे श्रमण-धर्म का पालन करना अतिकठिन है ।

155. श्रमणत्व, महान् गुरुतरभार

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महब्भरो ।
गुरुओ लोहभारुव्व, जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 295]
— ***उत्तराध्ययन 19/37***

इस श्रमण-चर्या में जीवनभर कहीं विश्राम नहीं है। भारी लोहभार की तरह सदा गुणों का महान् गुरुतर भार उठाना बहुत ही मुश्किल है।

156. निर्दोष वस्तु अतिदुष्कर

अणवज्जेसणिज्जस्स गिण्हणा अविदुक्करं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— ***उत्तराध्ययन 19/28***

प्रदत्त वस्तु को भी गवेषणापूर्वक और निर्दोष ही ग्रहण करना अति दुर्लभ है।

157. अहिंसा दुष्कर

पाणाइवायविरइ, जावज्जीवाय दुक्करं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— ***उत्तराध्ययन 19/26***

जीवनभर प्राणियों की हिंसा नहीं करना, बहुत ही कठिन कार्य है।

158. श्रमणत्व दुष्कर

सामण्णं पुत्त दुच्चरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— ***उत्तराध्ययन - 19/25***

श्रमणधर्म का आचरण अत्यन्त दुष्कर है।

159. लोहे के चने चबाना

जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— ***उत्तराध्ययन - 19/39***

श्रमण जीवन का पालन करना मोम के दाँतों से लोहे के चने चबाना है।

160. आत्मोद्धार हेतु उद्‌गार

जहा गेहे पलितम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभंडाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ ॥

एवं लोए पलित्तंमि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन - 19/23-24*

जैसे घरमें आग लग जाने पर गृहपति मूल्यवान् - सारभूत वस्तुओं को बाहर निकाल लाता है और मूल्यहीन वस्तुओं को वहीं छोड़ देता है, वैसे ही जरा और मृत्यु की अग्नि से प्रज्ज्वलित इस संसार में से मैं भी सारभूत अपनी आत्मा को बाहर निकाल लूँगा अर्थात् उद्धार करूँगा ।

161. संयम दुष्कर

जहा दुक्ख भारेउं जे, होइ वायस्स कुत्थलो ।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेण समणत्तणं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन 19/41*

जैसे-कपड़े के थैले को हवा से भरना कठिन है, वैसे ही कायर व्यक्ति के लिए श्रमण-धर्म का पालन करना भी कठिन कार्य है ।

162. सहस्त्र गुणधारक भिक्षु

गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खूणा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन - 19/25*

भिक्षु को हजारों गुण धारण करने होते हैं ।

163. अतिकठिन क्या ?

सव्वारंभ परिच्चाओ, निम्ममत्तं सुदुक्करं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन 19/30*

सभी हिंसात्मक प्रवृत्तियों और ममत्त्व का त्याग करना अत्यन्त कठिन है ।

164. संयम, बालूमोदक

बालुयाकवले चेव, निरस्साए उ संजमे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

– *उत्तराध्ययन 19/38*

संयम, बालू-रेती के कौर की तरह नीरस है, स्वाद रहित है ।

165. शत्रु-मित्र में समता

समया सव्वभूएसु सत्तुमित्तसु वा जगे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

– *उत्तराध्ययन - 19/26*

साधु, जगत् के शत्रु अथवा मित्र सभी जीवों के प्रति समभाव रखते हैं ।

166. हितकारी सत्य

भासियव्वं हियं सच्चं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

– *उत्तराध्ययन 19/27*

सदा हितकारी सत्य बोले ।

167. अदत्त-त्याग

दंतसोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

– *उत्तराध्ययन 19/27*

और तो क्या ? साधक बिना किसी की अनुमति के दाँत साफ करने के लिए एक तिनका भी नहीं लेता ।

168. ब्रह्मचर्य अतिकठिन

दुक्खं बंभव्वयं घोरं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

– *उत्तराध्ययन - 19/33*

घोर ब्रह्मचर्य को धारण करना अतिकठिन है ।

169. संयम-साधना, समुद्र तैरना

बाहाहिं सागरो चेव तरियव्वो गुणोयहि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन - 19/36*

ज्ञानादि गुणों के सागर-संयम को पार पाने का कार्य भुजाओं से समुद्र तैरने जैसा दुष्कर है ।

170. तपाचरण, असिधारावत्

असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन 19/37*

तपाचरण करना तलवार की धार पर चलने जैसा दुष्कर है ।

171. सुखी कौन ?

अद्धाणं जो महंतं तु, सपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो सुही होइ, छुआ-तण्हा विवज्जिओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन 19/21*

जो पथिक लम्बी यात्रा के पथपर अपने साथ पाथेय लेकर चलता है, वह आगे जाता हुआ भूख और प्यास से किञ्चित् भी पीड़ित न होकर अत्यन्त सुखी होता है ।

172. चारित्र दुष्कर

अहीवेगन्त दिट्ठिए, चरित्ते पुत्त ! दुच्चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन 19/38*

जैसे-सर्प एकान्त दृष्टि से चलता है, वैसे ही एकान्त दृष्टि से चारित्र धर्म का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

173. ब्रह्मचर्य दुष्करतम

उग्गं महव्वयं बंभं धारेयव्वं सुदुक्करं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन 19/29*

उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करना अतिकठिन कार्य है ।

174. धर्मी, सुखी

एवं धम्मंपि काउणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो से सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन - 19/22*

जो मनुष्य यहाँ भली भाँति धर्म की आराधना करके परलोक जाता है; वह वहाँ अल्पकर्मी तथा पीड़ारहित होकर अत्यन्त सुखी होता है ।

175. अधर्मी, दुःखी

एवं धम्मं अकाऊण, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो से दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 295]

— *उत्तराध्ययन - 19/20*

जो मनुष्य बिना धर्माचरण किए परलोक में जाता है, वह वहाँ अनेकानेक रोग और व्याधियों (कष्टों) से पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी होता है ।

176. अनन्त वेदनामय संसार

सरीरमाणसा चेव वेयणाओ अणंतसो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 296]

— *उत्तराध्ययन 19/46*

इस संसार में शारीरिक और मानसिक अनन्त वेदनाएँ हैं ।

177. तृष्णा

इहलोगे निप्पिवासस्स, नऽत्थि किंचिवि दुक्करं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 296]

— *उत्तराध्ययन 19/44*

इस संसार में जिनकी तृष्णा बुझ चुकी है, अभिलाषा-इच्छा शान्त हो गई है, उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है।

178. पापात्मा की दुर्दशा

दड्ढो-पक्को अ अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 297]

— *उत्तराध्ययन 19/58*

यह पापात्मा पाप-कर्मों द्वारा आग से जलायी गयी, पकायी गयी और दु.ख झेलने के लिए विवश की गयी।

179. जीव-दुर्दशा

कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कित्तो अ अणेगसो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 297]

— *उत्तराध्ययन - 19/63*

यह आत्मा अनेकबार कैंचियों से काटी गयी है, फाड़ी गयी व छेदी गयी है और इसकी चमड़ी भी उधेड़ी गई है।

180. नर्क वेदना-विभीषिका

महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु दुहवेयणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 297]

— *उत्तराध्ययन 19/73*

नरकों में दु.ख-वेदनाएँ महान् भयंकर और भीषण होती हैं।

181. नारकीय वेदना अनंत

जारिसा माणुसे लोए तथा दीसंति वेयणा ।
एतो अणंतगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 297]

— *उत्तराध्ययन - 19/74*

मनुष्यलोक में जो वेदनाएँ नजर आ रही हैं; नरकों में उनसे अनन्तगुणी अधिक दु:ख-वेदनाएँ हैं।

182. पक्षी-परिचर्या

परिकम्मं को कुणइ, अरण्णे मीगपक्खिणं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 299]

– *उत्तराध्ययन* - *19/77*

जंगलों में रहनेवाले पशु व पक्षियों की परिचर्या-चिकित्सा कौन करता है ?

183. निन्दा-अवज्ञा-वर्जन

नो हीलए नो विय खिंसइज्जा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 299-1174]

– *उत्तराध्ययन* - *19/84*

एवं दशवैकालिक* - *9/3/12

न तो किसी की निंदा करो और न अवज्ञा ।

184. मुनि का वास्तविक स्वरूप

निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 300]

– *उत्तराध्ययन* - *19/90*

मुनि वही है, जिसने ममता को मार डाला है, अहंकार को चकनाचूर कर दिया है, सब प्रकार के परिग्रह का त्याग कर दिया है; बड़प्पन को छोड़ दिया है और जो जंगम तथा स्थावर प्राणी के प्रति समान भाव रखता है ।

185. मुनि सबसे मुक्त

गारवेसु कसायसुदंड-सल्ल भएसु य ।
णियतो हास-सोगाओ, अणियाओ अबंधणो ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 300]

– *उत्तराध्ययन 19/92*

मुनि गर्व, कषाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त तथा निदान और बंधन से मुक्त होता है ।

186. सर्प-केंचुलीवत् ममत्त्व-त्याग

ममत्तं छिंदइ ताहे, महानागुव्व कंचुयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 300]

— *उत्तराध्ययन 19/86*

आत्म-साधक ममत्त्व के बन्धन को वैसे ही तोड़ फेंकता है। जैसे सर्प शरीर पर आई हुई केंचुली को उतार फेंकता है।

187. मुनि वही

लाभालाभे सुहे-दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 300]

— *उत्तराध्ययन 19/91*

जो लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निंदा-प्रशंसा और मान-अपमान में समभाव रखता है, वही वस्तुतः मुनि है।

188. साधु की कसौटी, समता

अणिस्सिओ इहलोए, परलोए अणिस्सिओ ।
वासीचन्दण कप्पो अ, असणे अणसणे तहा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 300]

— *उत्तराध्ययन 19/92*

साधु इसलोक और परलोक में निरपेक्ष भावसे रहे। वसुले से काटे जाने पर अथवा चन्दन लगाये जाने पर, भोजन मिलने पर या न मिलने पर हर परिस्थिति में वह समभाव से रहे।

189. श्रमण, आत्मानुशासी

अज्झप्पज्झाण जागेहिं, पसत्थदमसासणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 300]

— *उत्तराध्ययन - 19/93*

संयमी साधक अध्यात्म तथा ध्यान-योग से आत्मा का दमन एवं अनुशासन करनेवाला होता है।

190. अनास्त्रवी श्रमण

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 300]

— *उत्तराध्ययन 19/93*

मुनि कर्म-आगमन के सभी अप्रशस्त द्वारों को सब ओर से बन्द कर अनास्रवी बन जाता है ।

191. दु:खवर्धक क्या ?

वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 301]

— *उत्तराध्ययन 19/99*

धन दु:खवर्धक है ।

192. भयावह क्या ?

ममत्तबंधं च महब्भयावहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 301]

— *उत्तराध्ययन - 19/99*

ममत्त्व का बन्धन अत्यन्त भयावह है ।

193. धर्म-धुरा

सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेह निव्वाण गुणावहं महं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 301]

— *उत्तराध्ययन 19/99*

जो सुखावह और निर्वाण के गुणों को देनेवाली है, ऐसी अनुत्तर महान् धर्म-धुरा को धारण करो ।

194. उत्तम चरित्र

तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 301]

— *उत्तराध्ययन 19/98*

तपोमूलक चारित्र ही श्रेष्ठ चारित्र है ।

195. अन्योन्याश्रित क्या ?

ज सम्मत्तं पासह, तं मोणं पासह ।
जं मोणं पासह, तं सम्मतं पासह ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 309]
— *आचारांग 1/5/3/155*

जो सम्यक्त्व को देखता है, वह मुनित्व को देखता है । जो मुनित्व को देखता है, वह सम्यक्त्व को देखता है ।

196. समत्वदर्शी

पंतं लूहं सेवंति वीरा सम्मत्तदंसिणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 309]
एवं [भाग 7 पृ. 737]
— *आचारांग 1/2/6/99 — 1/5/3/155*

समत्वदर्शी वीर साधक रूखे-सूखे नीरस आहार का समतापूर्वक सेवन करते हैं ।

197. मौन

मुणी मोणं समायाय धुणे कम्मसरीरगं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 309]
एवं [भाग 7 पृ. 737]
— *आचारांग 1/2/6/99*

मुनि मौन (संयम अथवा ज्ञान) को ग्रहण कर कर्मरूप शरीर को धुन डालता है अर्थात् आत्मा से दूर कर देता है ।

198. मुनि कौन ?

मन्यते यो जगत्तत्त्वं स मुनिः परिकीर्तितः ।
सम्यक्त्वमेव मौनं, मौनं सम्यक्त्वमेव च ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 309]
— *ज्ञानसार 13/1*

जो जगत् के स्वरूप का ज्ञाता है, उसे मुनि कहा गया है । अत. सम्यक्त्व ही श्रमणत्व है और श्रमणत्व ही सम्यक्त्व है ।

199. सर्वश्रेष्ठ मौन

सुलभं वागनुच्चारं मौनमेकेन्द्रियेष्वपि ।
पुद्गलेषु अप्रवृत्तिस्तु योगिनां मौनमुत्तमम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 310]
– *ज्ञानसार 13/7*

वाणी का अनुच्चार रूप मौन एकेन्द्रिय जीवों में भी आसानी से प्राप्त हो सकता है, लेकिन पुद्गलों में मन-वचन, और काया की कोई प्रवृत्ति न हो; यही योगी पुरुषों का सर्वश्रेष्ठ मौन है ।

200. क्रिया, ज्ञानमयी

ज्योतिर्मयी व दीपस्य क्रिया सर्वाऽपि चिन्मयी ।
यस्यानन्यस्वभावस्य तस्य मौनमनुत्तरम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 311]
– *ज्ञानसार 13/8*

जैसे दीपक की समस्त क्रियाएँ (ज्योति का ऊँचा-नीचा होना, वक्र होना और कम ज्यादा होना) प्रकाशमय होती हैं, वैसे ही आत्मा की सभी क्रियाएँ ज्ञानमयी होती हैं । उस अनन्य स्वभाववाले मुनि का मौन अनुत्तर होता है ।

201. कर्मक्षय से मोक्ष

कृत्स्नकर्मक्षयो मुक्तिः ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 316]
– *द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका 31/18*

समग्र कर्मों का क्षय हो जाने से मोक्ष प्राप्त होता है ।

202. निर्लोभता-फल

मुत्तीएणं अकिंचणत्तं जणयइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 318]
– *उत्तराध्ययन 29/47*

निर्लोभता से अकिंचनभाव (परिग्रह रहित) की प्राप्ति होती है ।

203. सत्य से सिद्धि

सव्वा उ मंत जोगा सिज्झंति धम्म अत्थकामा य ।
सच्चेण परिग्गहिया, रोगा सोगा य नस्संति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 326]
— ***धर्मसंग्रह अधिकार 2, श्लोक 26 टीका***

सत्य के प्रभाव से सभी मन्त्र, योग, धर्म, अर्थ और काम सिद्ध हो जाते हैं और सारे रोग-शोक भी नष्ट होते हैं ।

204. सत्य सर्वस्व

सच्चं जसस्समूलं, सच्चं विस्सास कारणं परमं ।
सच्चं सग्गद्दारं, सच्चं सिद्धीइ सोपाणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 326]
— ***धर्मसंग्रह 2/59***

सत्य यश का मूल कारण है, सत्य विश्वास का मुख्य कारण है, सत्य स्वर्ग का द्वार है और सत्य सिद्धि का सोपान है ।

205. सत्य ही भगवान्

तं सच्चं भगवं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]
— ***प्रश्नव्याकरण 2/7/24***

सत्य ही भगवान् है ।

206. सत्य, प्रकाशक

सच्चं .... पभासकं भवति सव्वभावाण ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]
— ***प्रश्नव्याकरण - 2/7/24***

सत्य-समस्त भावों-विषयों का प्रकाश करनेवाला है ।

207. सत्य ही सारभूत

सच्चं लोगम्मि सारभूयं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 327]

— *प्रश्नव्याकरण 2/7/24*

'सत्य' ही लोक में सारभूत तत्त्व है।

208. सत्य, सौम्य-तेजस्वी

सच्चं......सोमतरं चंदमंडलाओ, दित्ततरं सूरमंडलाओ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 327]

— *प्रश्नव्याकरण 2/7/24*

सत्य, चन्द्रमण्डल से भी अधिक सौम्य और सूर्यमण्डल से भी अधिक तेजस्वी है।

209. कैसा सत्य नहीं बोले ?

सच्चं पि य संजमस्स उवरोहकारकं
किंचि वि न वत्तव्वं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 327]

— *प्रश्नव्याकरण 2/7/24*

सत्य भी यदि संयम का घातक हो तो, नहीं बोलना चाहिए।

210. असत्य के समकक्ष क्या ?

अप्पणो थवणा, परेसु निंदा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 327]

— *प्रश्नव्याकरण - 2/7/24*

अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा भी असत्य के ही समकक्ष है।

211. सत्य-चमत्कार

सच्चेण य तत्ततेल्ल तउलोह सीसगाइं छिवंति,
धरेंति ण य उज्झंति मणुस्सा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 327]

— *प्रश्नव्याकरण - 2/7/24*

सत्यनिष्ठ मनुष्य सत्य के प्रभाव से उबलते हुए तेल, कथीर, लोहे और सीसे को छू लेते हैं, उन्हें हथेली पर रख लेते हैं, फिर भी जलते नहीं हैं।

212. सत्य-प्रभाव

सच्चेण य उदगसंभमम्मि वि ण बुज्झइ
ण य मरंति थाहं ते लहंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 327]
— ***प्रश्नव्याकरण*** - 2/7/24

सत्य के प्रभाव से जल का उपद्रव होने पर भी मनुष्य न तो बहते हैं और न मरते ही हैं, अपितु पानी का थाह पा लेते हैं ।

213. सत्यनिष्ठ

सच्चेण य अगणि संभमम्मि वि ण
डज्झंति उज्जुगा मणुस्सा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 327]
— ***प्रश्नव्याकरण*** 2/7/24

यह सत्य का ही प्रभाव है कि जलती हुई अग्नि के भयंकर घेरे में पड़े हुए सरल सत्यवादी मनुष्य जलते नहीं हैं ।

214. सत्य पर प्रतिष्ठित

जे विय लोगम्मि अपरिसेसा मंत जोगा जया च विज्जा य ।
जंभगा य अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खाओ य ॥
आगमा य सव्वाइं पि ताइं सच्चे पइट्ठियाइं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]
— ***प्रश्नव्याकरण*** - 2/7/24

इस लोक में जितने भी मंत्र, योग, जप विद्याएँ, जृंभक, अस्त्र-शस्त्र, शिक्षाएँ और आगम हैं; वे सभी सत्य पर अवस्थित हैं अर्थात् इन सबका मूलाधार सत्य है ।

215. सत्य, लंगर

सच्चेण महा समुद्दमज्झे वि चिट्ठंति
न निमज्जेति मूढाणिया वि पोया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]

— *प्रश्नव्याकरण - 2/7/24*

महासमुद्र के मध्य दिग्भ्रान्त सैनिकों के जहाज सत्य के प्रभाव से स्थिर रहते हैं, वे डूबते नहीं हैं ।

216. सत्य वचन, सत्यं शिवं सुन्दरम्

सच्चवयणं सुद्धं सुचियं सिवं
सुजायं सुभासियं सुव्वयं सुकहियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]

— *प्रश्नव्याकरण - 2/7/24*

यह सत्य वचन शुद्ध है, पवित्र है, शिव है, सुजात है, सुभाषित है, उत्तम व्रतरूप है और सुकथित है ।

217. सत्य कैसा है ?

सच्चं लोगम्मि सारभूयं,
गंभीरतरं महासमुद्दाओ,
थिरतरं मेरु पव्वयाओ,
सोमतरं चंदमण्डलाओ,
दित्ततरं सूरमंडलाओ,
विमलतरं सरयनहतलाओ,
सुरहितरं गंधमायणाओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]

— *प्रश्नव्याकरण 2/7/24*

सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है, यह महासमुद्र से भी अधिक गंभीर है, मेरुपर्वत से अधिक सुदृढ है, चन्द्रमण्डल से अधिक सौम्य है, सूर्यमण्डल से अधिक प्रदीप्त है, शरदकालीन आकाशतल से अधिक निर्मल है और गन्धमादन पर्वत से भी अधिक सुरभित है ।

218. सत्यव्रत-महिमा

सच्चवयण तव णियम परिग्गहियं
सुगइपहदेसगं य लोगुत्तमं वयमिणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *2/7/24*

यह सत्य व्रत तप और नियम से स्वीकृत है, सद्गति का पथ-प्रदर्शक है और लोक में उत्तम है।

219. सत्य, सिद्धिदाता

तं सच्चं .... मंतोसहि विज्जा साहणत्थं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *- 2/7/24*

सत्य के प्रभाव से मंत्रौषधि और विद्याओं की सिद्धि होती है।

220. सत्यानुरागी

सा देव्वाणि य देवयाओ करेंति सच्चवयणे रत्ताणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *2/7/24*

सत्य से आकृष्ट होकर देवता भी सत्यानुरागी व्यक्तियों का सान्निध्य अर्थात् सेवा सहायता करते हैं।

221. साँच को आँच नहीं

पव्वय कडकाहिं मुच्चंते ण मरंति सच्चेण य परिग्गहिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *- 2/7/24*

सत्यनिष्ठ मनुष्य को ऊँचे पर्वत-शिखर से नीचे फेंक दिया जाय तो भी वह मरता नहीं है।

222. सत्यनिष्ठ, वन्दनीय-अर्चनीय

मणुगयाणं वंदणिज्जं अमरगणाण अच्चणिज्जं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]

— ***प्रश्नव्याकरण*** *- 2/7/24*

सत्यनिष्ठ व्यक्ति, मनुष्यों द्वारा वन्दनीय-स्तवनीय है। इतना ही नहीं, देवगणों के लिए भी वह अर्चनीय होता है।

223. सत्यवादी निरापद

वहबंधाभियोग वेरघोरेहिं पमुच्चंति य
अमित्तमज्झाहि णियंति अणहाय सच्चवाई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]
— *प्रश्नव्याकरण - 2/7/24*

सत्यवादी मनुष्य घोर वध, बन्धन, सबल प्रहार और वैर-विरोधियों के बीच में से भी मुक्त हो जाते हैं तथा शत्रुओं के चंगुल से बचकर बिना किसी क्षति के सकुशल बाहर निकल आते हैं ।

224. सत्य-कवच

असिपंजरगया समराओ वि णियंति अणहाय सच्चवाई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 327]
— *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

सत्यवादी मनुष्य चारों ओर से तलवारधारियों के पिंजरे में पड़े हुए भी अक्षत शरीर संग्राम से बाहर निकल आते हैं ।

225. सत्य-अपूर्व महिमा

सत्येनाग्निभवेच्छीतोऽगाधं दत्तेऽम्बु सत्यतः ।
नासिश्छिनत्ति सत्येन, सत्याद् रज्जूयते फणी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 328]
— *आगमीय सूक्तावली पृ. 34*

सत्य से अग्नि शीतल हो जाती है, अथाह जल थाह दे देता है अर्थात डूबोता नहीं है, तलवार काटती नहीं है और सर्प रस्सी के समान बन जाता है ।

226. निर्णीत सत्य वचन

समिक्खियं संजएण कालम्मि य वत्तव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 328-330]
— *प्रश्नव्याकरण - 2/7/24*

बुद्धि से सम्यक्तया निर्णीत सत्यवचन श्रमण को यथावसर ही बोलना चाहिए ।

227. प्रिय-सत्य बोलो

प्रियं सत्यं वाक्यं हरति हृदयं कस्य न जने ?
गिरं सत्यां लोकः प्रतिपदमिमामर्थयति च ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 328]
— ***प्रश्नव्याकरण-आगमीय सूक्तावली पृ. 34***

प्रिय सत्यवचन किसके मन को आकर्षित नहीं करता ? अर्थात् सभी को मोहित करता है। यह लोक प्रचलित वाणी संसार में कदम-कदम पर सार्थक होती है।

228. सत्य से बढ़कर नहीं !

सत्याद् वाक्याद् व्रतमभिमतं नास्ति भुवने ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 328]
— ***प्रश्नाव्याकरण-आगमीय सूक्तावली पृ. 34***

सत्यवचन से बढ़कर इस संसार में अन्य कोई व्रत नहीं है।

229. निर्ग्रन्थ कौन ?

अणुवीयिभासी से णिग्गंथे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 330]
— ***आचारांग - 2/3/15/2***

जो विचारपूर्वक बोलता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ है।

230. बोलो, परपीड़ाकारक नहीं

ण य परस्स पीडाकरं सावज्जं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 330]
— ***प्रश्नव्याकरण - 2/7/25***

पर को पीड़ा उत्पन्न करनेवाला पापयुक्त वचन मत बोलो।

231. क्रोधजेता निर्ग्रन्थ

कोहं परिजाणइ से णिग्गंथे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 330]

— *आचारांग - 2/3*

क्रोध का कटु फल जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है ।

232. असत्य से दूषित वचन

अणणुवीयि भासी से णिग्गंथे
समावज्जिजज्जा मोमं वयणाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 330]
— *आचारांग -2/3/15/3*

जो निर्ग्रन्थ विचारपूर्वक नहीं बोलता है, उसका वचन कभी-न-कभी असत्य से दूषित हो सकता है ।

233. हित-मित प्रिय !

सच्चं च हियं च मियं च गाहगं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 330]
— *प्रश्नव्याकरण - 2/7/25*

ऐसा सत्यवचन बोलना चाहिए, जो हित-मित और ग्राह्य हो ।

234. असत्य कब ?

कोहाप्पत्ते-कोही तं समावइज्जा मोसं वयणाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 330]
— *आचारांग 2/3*

क्रोध का प्रसंग आने पर क्रोधी व्यक्ति आवेशवश असत्य वचन बोल देता है ।

235. क्रोधान्ध

कुद्धो................सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 331]
— *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

क्रोध में अंधा हुआ व्यक्ति सत्य, शील और विनय का नाश कर डालता है ।

236. लोभी-लालची

लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ. 331)
- *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

मानव लोभी और लालची होकर झूठ बोलता है ।

237. लोभी

लोभपत्ते लोभी समावइज्जा मोसं वयणाए ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ 331)
- *आचारांग 2/3*

लोभ का प्रसग आनेपर लोभी मनुष्य असत्य का आश्रय ले लेता है ।

238. सच्चा निर्ग्रन्थ

लोभं परिजाणइ से णिग्गंथे ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ 331)
- *आचारांग- 2/3/1*

जो लोभ को अच्छीतरह परखना जानता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ साधक है ।

239. अपमान का कारण क्या ?

पर परिभव कारणं च हासं ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ 331)
- *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

परिहास, दूसरों के अपमान-तिरस्कार का कारण होता है ।

240. लोभी झूठों का सरदार

कारणसएसु लुद्धो भणेज्ज अलियं ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ. 331)
- *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

लोभी-लालची मनुष्य सैकड़ों प्रयोजनों से झूठ बोलता है ।

241. निर्लोभता

लोभो न सेवियव्वो ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ. 331)
- ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

लोभ मत करो ।

242. क्रोधी

कुद्धो चंडिक्किओ मणूसो अलियं भणेज्ज ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ. 331)
- ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

क्रोधी मनुष्य रौद्र स्वभावी बन जाता है और ऐसी स्थिति में वह मिथ्याभाषण करता है ।

243. लोभी-लालची प्रवृत्ति

लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं ईड्ढीए व सोक्खस्स व काएण ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ. 331)
- ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

लोभी-लालची मनुष्य ऋद्धि-वैभव और सुख केलिए मिथ्याभाषण करता है ।

244. हास्य में निन्दा प्रिय

पर परिवायप्पियं च हासं ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ. 331)
- ***प्रश्नव्याकरण 2/7/25***

हास्य-परिहास में परकीय निन्दा-तिरस्कार ही प्रिय लगता है ।

245. हास्य-वर्जन

हास ण सेवियव्वं ।

- **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** (भाग 6 पृ. 331)

- *प्रश्नव्यकरण 2/7/25*

हँसी मत करो ।

246. क्रोध-वर्जन

कोहो ण सेवियव्वो ।

- श्री अभिधान राजेन्द्र कोष (भाग 6 पृ. 331)
- *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

क्रोध मत करो ।

247. हास्य

परपीडाकारगं च हासं ।

- श्री अभिधान राजेन्द्र कोष (भाग 6 पृ. 331)
- *प्रश्नव्याकरण 2/7/25*

हास्य परपीड़ाकारक होता है ।

248. निर्ग्रन्थ कौन ?

भयं परियाणई से निग्गंथे ।

- श्री अभिधान राजेन्द्र कोष (भाग 6 पृ. 331)
- *आचारांग 2/3*

जो साधक भय का दुष्फल जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है ।

249. वही निर्ग्रन्थ

हासं परिजाणइ से निग्गंथे ।

- श्री अभिधान राजेन्द्र कोष (भाग 6 पृ. 331)
- *आचारांग 2/3*

जो साधक हास्य के अनिष्ट परिणाम को जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है ।

250. भय से असत्य

भयापत्ते भीरु समावइज्जा मोसं वयणाए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष (भाग 6 पृ. 331)

— *आचारांग 2/3*

भय का प्रसंग आनेपर भयभीत व्यक्ति भयाविष्ट होकर असत्य बोल देता है।

251. हास्य से मिथ्याभाषण

हासापत्ते हासी समावइज्जा मोसं वयणाए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 331]

— *आचारांग - 2/3*

हँसी-मजाक का प्रसंग आने पर हँसी करने वाला व्यक्ति हास्यवश झूठ बोल देता है।

252. त्रिविध-मूर्ख

तिविहा मूढा पण्णता तं जहा-णाणमूढा,
दंसणमूढा, चरित्तमूढा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 337]

— *स्थानांग - 3/4/203*

मूर्ख तीन प्रकार के कहे गए हैं - ज्ञान से मूर्ख (ज्ञानहीन), दर्शन से मूर्ख (श्रद्धाहीन) और चारित्र से मूर्ख (आचरणहीन)।

253. मृत्यु-मूल

मरणस्य मूलं दुःखं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 337]

— *उत्तराध्ययन सटीक - 32 अ.*

मृत्यु का मूल दुःख है।

254. अकल्प भी कल्प

णाणातिकारणावेक्ख अकप्पसेवणा कप्पा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 340]

— *निशीथ चूर्णि 92*

ज्ञानादि की अपेक्षा से किया जानेवाला अकल्प सेवन भी कल्प है।

255. दर्प, कल्प कब ?

पमाया दप्पा भवति, अप्पमाया कप्पा भवति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 340]

– ***निशीथ चूर्णि - 91***

प्रमादभाव से किया जानेवाला अपवाद सेवन दर्प होता है और वही अप्रमादभाव से किया जानेपर कल्प-आचार हो जाता है ।

256. ज्ञान-प्रकाश

णाणुज्जोया साधु ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 355]

– ***निशीथ भाष्य - 225***

बृहत्कल्प भाष्य - 3453

साधु ज्ञान का प्रकाश लिए जीवन-यात्रा करता है ।

257. श्रमण-क्रिया क्यों ?

जा चिट्ठा सा सव्वा, संजमहेउं ति होती समणाणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 360]

– ***निशीथ भाष्य 264***

श्रमणों की सभी चेष्टाएँ-क्रियाएँ संयम के हेतु होती हैं ।

258. दर्पिका-कल्पिका स्वरूप

रागदोसाणुगया तु दप्पिया तु तदभावा ।
आराधणा उ कप्पे, विराधणा होति दप्पेणं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 426]

– ***निशीथभाष्य - 363***

– ***बृह. भाष्य - 4943***

राग-द्वेष पूर्वक की जानेवाली प्रतिसेवना (निषिद्ध आचरण) दर्पिका है और राग-द्वेष से रहित प्रतिसेवना (अपवाद-काल में परिस्थितिवश किया जानेवाला निषिद्ध आचरण) कल्पिका है । कल्पिका में संयम की आराधना है और दर्पिका में विराधना ।

259. अब्रह्मचर्य त्याज्य

अबंभचरियं घोरं, पमायं दुराहिट्ठियं ।
नायरंति मुणी लोए, भेयाययण वज्जिणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 426]
— *दशवैकालिक - 6/15*

जो मुनि संयम-विघातक दोषों से दूर रहते हैं, वे लोक में रहते हुए भी प्रमाद का घर और असेव्य भयंकर अब्रह्मचर्य का कभी आचरण नहीं करते ।

260. अब्रह्मचर्य, महादोषों का स्रोत

मूलमेयमहम्मस्स महादोस समुस्सयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 427]
— *दशवैकालिक 6/16*

अब्रह्मचर्य अधर्म का मूल और महादोषों का स्रोत स्थान है ।

261. मोक्ष एक

एगे मोक्खे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 431]
— *स्थानांग 1/1*

आठ कर्मों के नाश की दृष्टि से मोक्ष एक है ।

262. महान् अनर्थकर

तपोधनानां पादेन स्पर्शनं महते अनर्थाय संपद्यते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 438]
— *द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका सटीक 13/6*

तपस्वियों को अपने पैर का स्पर्श हो जाना (पैर की ठोकर लगना) भी महान् अनर्थकारक होता है ।

263. संसार-मोक्ष-हेतु

जे जत्तिया य हेउ भवस्स, ते चेव तत्तिया मोक्खे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 439]
— ***ओघनिर्युक्ति 53***

जो और जितने हेतु संसार के हैं, वे और उतने ही हेतु मोक्ष के हैं।

264. चरित्र महान्

चरणगुण विप्पहीणो, वुड्डइ सुबहुंपि जाणंतो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 442]
— ***आवश्यकनिर्युक्ति 97***

जो साधक चारित्र के गुणों से हीन है, वह बहुत से शास्त्र पढ़ लेने पर भी संसार-समुद्र में डूब जाता है।

265. ज्योतिहीन दीपक

दीवसयसहस्स कोडी वि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 442]
— ***आवश्यकनिर्युक्ति - 98***

उन करोड़ों दीपकों से भी क्या लाभ है ? जिनमें ज्योति नहीं है ?

266. अन्धे को दीपक दिखाना

सुबहुंपि सुयमहियं, किं काही चरणविप्पहाणस्स ।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्स कोडिवि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 442]
— ***आवश्यकनिर्युक्ति 98***

शास्त्रों का बहुत सा अध्ययन भी चरित्रहीन के लिए किस काम का ? क्या करोड़ों दीपक जला देने पर भी अन्धे को कोई प्रकाश मिल सकता है ?

267. शास्त्र, ज्योति

अप्पं पि सुयमहियं, पगासयं होइ चरणजुत्तस्स ।
एक्को वि जह पइवो स चक्खु अस्सो पयासेइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 443]
— ***आवश्यकनिर्युक्ति 99***

शास्त्र का थोड़ा सा अध्ययन भी सच्चरित्र साधक के लिए प्रकाश देनेवाला होता है। जिसकी आँखें खुली हैं उसे एक दीपक भी काफी प्रकाश दे देता है।

268.. क्रियाहीन ज्ञान

हय नाणं किया हीणं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 443]

– *आवश्यकनिर्युक्ति* - *201*

आचारहीन ज्ञान नष्ट हो जाता है।

269. ज्ञान, भारभूत

जहा खरो चंदणभारवाही,
भारस्स भागी न उ चंदणस्स ।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो,
नाणस्स भागी न उ सुग्गईए ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 443]

– *आवश्यकनिर्युक्ति* - *100*

जैसे चंदन का भार उठानेवाला गधा सिर्फ भार ढोनेवाला है, उसे चंदन की सुगंध का कोई पता नहीं चलता, इसीप्रकार चरित्रहीन ज्ञानी सिर्फ ज्ञान का भार ढोता है, उसे सद्गति प्राप्त नहीं होती।

270. ज्ञान-क्रिया, अन्ध-पंगुवत्

हयनाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया ।
पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 443]

– *आवश्यकनिर्युक्ति* - *201*

आचारहीन ज्ञान नष्ट हो जाता है और ज्ञान-हीन आचार। जैसे वन में अग्नि लगने पर पंगु उसे देखता हुआ और अंधा दौड़ता हुआ भी आग से बच नहीं पाता, जलकर नष्ट हो जाता है।

271. संयम, पापरोधक

संजमो य गुत्ति करो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 444]

– ***आवश्यकनिर्युक्ति - 103***

संयम पापों का निरोध करता है ।

272. त्रिवेणी सङ्गम

तिण्हंपि समाओगे मोक्खो जिणसासणे भणिओ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 444]

– ***आवश्यकनिर्युक्ति 103***

ज्ञान-तप एवं संयम इन तीनों के समवाय से ही मोक्ष होता है । यही जिनशासन का कथन है ।

273. ज्ञान, प्रकाशक

नाणं पयासयं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 444]

– ***आवश्यकनिर्युक्ति - 103***

ज्ञान प्रकाश करनेवाला है ।

274. तप-विशुद्धि

सोहओ तवो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 444]

– ***आवश्यकनिर्युक्ति - 103***

तप विशुद्धि करता है ।

275. केवलज्ञान कब ?

केवलियनाण लंभोऽनण्णत्थ खए कसायाणां ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 445]

– ***आवश्यकनिर्युक्ति 104***

क्रोधादि कषायों को क्षय किए बिना केवलज्ञान (पूर्ण ज्ञान) की प्राप्ति नहीं होती ।

276. चारित्र, कर्मरोधक

चरित्तेणं निगिण्हाई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 448]

— *उत्तराध्ययन 28/35*

आत्मा चारित्र से कर्म-द्वारों को रोकती है ।

277. तप-संयम से कर्मक्षय

खवित्ता पुव्व कम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्ख पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 448]

— *उत्तराध्ययन - 28/36*

समस्त दु:खों से मुक्ति चाहनेवाले महर्षि संयम और तप के द्वारा अपने पूर्वसंचित कर्मों को क्षय कर परम सिद्धि को पाते हैं ।

278. दर्शन से श्रद्धा

सम्मत्तेण य सद्दहे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 448]

— *उत्तराध्ययन - 28/35*

आत्मा दर्शन से श्रद्धा करती है ।

279. तप से शुद्धि

तवेण परिसुज्झइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 448]

— *उत्तराध्ययन - 28/35*

आत्मा तप से पूर्वकृत कर्मों का क्षय करके शुद्ध होती है ।

280. मुक्ति-मार्ग

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गुत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 448]

— *उत्तराध्ययन 28/2*

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी परमात्मा ने फरमाया है कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना ही मोक्ष-मार्ग है।

281. आत्मा, ज्ञाता

नाणेण जाणइ भावे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 448]

— *उत्तराध्ययन 28/35*

आत्मा ज्ञान से पदार्थों को जानती है।

282. मोह से जन्म-मरण

मोहेण गब्भं मरणाइ एइ, एत्थ मोहे पुणो पुणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 456]

— *आचारांग 1/5/1/142*

अज्ञानी मोह से बार-बार गर्भ में आता है, जन्म-मरणादि पाता है। इस जन्म-मरण की परम्परा में उसे बार-बार मोह (व्याकुलता) उत्पन्न होता है।

283. अहं ब्रह्मास्मि

शुद्धात्मद्रव्यमेवाहं, शुद्धज्ञानं गुणो मम ।
नान्योऽहं न ममान्ये, चेत्यहो मोहास्त्रमुल्बणम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 457]

— *ज्ञानसार - 4/2*

मैं शुद्ध आत्मद्रव्य हूँ और शुद्ध ज्ञान 'मेरा' स्थायी गुण है। मैं उससे अलग नहीं हूँ। उसके बिना अन्य कोई 'मैं' या 'मेरा' नहीं है। इस प्रकार की दृढ मान्यता ही मोह निकन्दन के लिए अतितीक्ष्ण शस्त्र है।

284. "मैं और मेरा"

अहं ममेति मन्त्रोऽयं मोहस्य जगदान्ध्यकृत् ।
अयमेव हि न पूर्वः, प्रतिमंत्रोऽपि मोहजित् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 457]

— *ज्ञानसार - 4/1*

"मैं' और 'मेरा' इस मोह-मन्त्र ने सारे जगत् को अन्धा बना रखा हैं। इसका विलोम-मन्त्र मोह मात्र को जीतने वाला प्रतिमन्त्र बनता है।

285. पाप-पंक से निर्लिप्त

यो न मुह्यति लग्नेषु, भावेष्वौदयिकादिषु ।
आकाशमिव पङ्केन, नाऽसौ पापेन लिप्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 457]

— *ज्ञानसार - 4/3*

जो जीव लगे हुए औदयिकादि भावों में मोहमूढ नहीं होता है। जैसे कीचड़ से आकाश पोता नहीं जा सकता, वैसे ही वह पापों से लिप्त नहीं होता है।

286. एकत्व भावना

एगोऽहं नऽत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सवि ।
एवं अदीणमणसो, अप्पाणमणुसासइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 457]

— *संथारापोरिसी 11*

मैं अकेला हूँ, न कोई मेरा है और न मैं किसीका हूँ। इसप्रकार अदीनभाव से अपनी आत्मा को अनुशासित करें।

287. अमूढ, अखिन्न

पश्यन्नेव परं द्रव्यं नाटकं प्रतिनाटकम् ।
भवचक्र पुरस्थोऽपि, ना मूढः परिखिद्यति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 457]

— *ज्ञानसार 4/4*

अमूढ पुरुष पुद्गल द्रव्य को देखते हुए और भव-चक्र के नाटक प्रति नाटक को देखते हुए भी खिन्न नहीं होता।

288. आत्मा स्फटिकवत्

निर्मल स्फटिकस्येव सहजं रूपमात्मनः ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 458]
– *ज्ञानसार 4/6*

आत्मा का सहज स्वरूप निर्मल स्फटिक रत्न जैसा है।

289. मूढ़ चेता

अमित्रं कुरुते मित्रं, मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं, तमाहुर्मूढचेतसम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 459]
– *धर्मबिन्दु 2/74*
महाभारत (उद्योगपर्व 33/33)

जो शत्रु को मित्र बनाता है, मित्र से द्वेष करता है, उसे हानि पहुँचाता है, बुरे कर्मों का आरम्भ करता है; उसे मूढ चेता कहते हैं।

290. मूढ, मगशैलिया पाषाण

अर्थवन्त्युपपन्नानि, वाक्यानि गुणवन्ति च।
नैव मूढो विजानाति, मुमूर्षुरिव भेषजम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 459]
– *धर्मबिन्दु 2/75*

जैसे मरणासन्न व्यक्ति को औषधि का असर नहीं होता वैसे ही मूढ़ को सदुपदेश का कोई असर नहीं होता।

291. मूर्ख, शिलावत्

संप्राप्तः पण्डितः कृच्छ्रं, प्रज्ञया प्रतिबुध्यते।
मूढस्तु कृच्छ्रमासाद्य, शिलेवाम्भसि मज्जति ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 459]
– *धर्मबिन्दु 2/76*

पंडितजन कष्ट पाकर भी बुद्धि से प्रतिबोध पा जाते हैं अर्थात् शिक्षा देने पर उसे ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु मूर्ख कष्ट आ जाने पर शिला की भाँति जलप्रवाह में डूब जाता है।

292. नकली ब्रह्मचारी

अबंभयारी जे केइ, बंभयारिति हं वए ।
गद्दहेव्व गवां मज्झं, विस्सरं नयइ नदं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 463]
— *दशाश्रुतस्कन्ध 9/12*

जो ब्रह्मचारी न होते हुए भी अपने आपको यह कहे कि "मैं ब्रह्मचारी हूँ", तो वह गायों के समूह के बीच गदर्भ की तरह विस्वर नाद करता है ।

293. महामोह से कर्मबन्ध

धंसेइ जो अभूएणं, अकम्मं अत्तकम्मुणा ।
अदुवा तुम मकासि त्ति महामोहं पकुव्वइ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 463]
— *दशाश्रुतस्कन्ध - 9/25*

जो अपने किए हुए दुष्कर्म को दूसरे निर्दोष व्यक्ति पर डालकर उसे लांछित करता है कि 'यह पाप तूने किया है' वह महामोह कर्म का बंध करता है ।

294. मिश्रभाषा से कर्मबन्ध

जाणमाणो परीसाए, सच्चमोसा ण भासए ।
अच्छीण डंडोल्लुरए, महामोहं पकुव्वति ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 463]
— *दशाश्रुतस्कन्ध 9/26*

जो सही स्थिति को जानता हुआ भी सभा के बीच में अस्पष्ट एवं मिश्रभाषा (कुछ सच, कुछ झूठ) का प्रयोग करता है, वह महामोह कर्म का बंध करता है ।

295.. सम्पत्ति हरण से कर्मबन्ध

जं णिस्सितो उव्वहइ, जससाऽहि गमेण वा ।
तस्स लुब्भइ वित्तम्मि, महामोहं पकुव्वति ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 463]

— *दशाश्रुतस्कन्ध - 9/15*

जिसके आश्रय, परिचय तथा सहयोग से जीवन-यात्रा चलती हो, उसकी सम्पत्ति का अपहरण करनेवाला दुष्ट जन महामोह कर्म का बन्ध करता है ।

296. परोपकारी की हत्या से महामोह बंध

बहुजणस्स नेयारं, दीवं ताणं च पाणिणं ।
एयारिसं नरं हंता, महामोहं पकुव्वइ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 463]

— *दशाश्रुतस्कन्ध 9/37*

दु ख सागर में डूबे हुए दु खी मनुष्यों का जो द्वीप के समान सहारा होता है, जो बहुजन समाज का नेता हैं, ऐसे परोपकारी व्यक्ति की हत्या करनेवाला महामोह कर्म का बंध करता है ।

297. गुण-वृद्धि

नाणेणं दसणेणं च चरित्तेणं तवेण य ।
खंतीए, मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 496]

— *उत्तराध्ययन - 22/26*

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, क्षमा और निर्लोभता की ओर सतत बढ़ते रहें ।

298. हिंसा, अश्रेयस्कर

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मंति सुबहू जिया ।
न मे एयं तु निस्सेयं, परलोगे भविस्सई ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 496]

— *उत्तराध्ययन 22/19*

यदि मेरे कारण से बहुत से जीवों का घात होता है, तो यह इस लोक और परलोक में मेरे लिए किञ्चित् भी श्रेयस्कर नहीं होगा ।

299. वेशमात्र से श्रमणत्व नहीं !

. गोवालो भंडवालो वा, जहा तद्दव्वऽणिस्सरो ।
एवं अणीसरो तंपि, सामन्नस्स भविस्ससि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 498]
— *उत्तराध्ययन - 22/46*

जिसप्रकार कोई गोपाल गौओं को चराने मात्र से उनका स्वामी नहीं बन सकता अथवा कोई (कोषाध्यक्ष) धन की रक्षा करने मात्र से ही उसका स्वामी नहीं हो सकता ठीक इसीतरह हे शिष्य ! तू भी केवल साधु-वेश की रक्षा-मात्र से ही श्रामण्य का स्वामी नहीं बन सकेगा ।

300. रात्रिभोजन-त्याग

अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्थाय अणुग्गए ।
आहार मइयं सव्वं, मणसाऽवि ण पत्थए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 510]
— *दशवैकालिक - 8/28*

संयमी आत्मा सूर्यास्त से लेकर पुनः सूर्योदय तक सब प्रकार के आहार की मन से भी इच्छा न करें ।

301. रात्रिभोजन किसके समकक्ष ?

रक्ती भवन्ति तोयानि, अन्नानि पिशितानि च ।
रात्रौ भोजनासक्तस्य, ग्रासे तन्मांसभक्षणात् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 510]
— *धर्मसंग्रह 2/73*

रात्रि भोजन में आसक्त व्यक्ति के ग्रास में किसी जीव के आ जाने से पानी रक्तवत् एवं अन्न माँसवत् हो जाता है ।

302. सूर्यास्त सूतक

मृते स्वजनं मात्रेऽपि सूतकं जायते किल ।
अस्तंगते दिवानाथे, भोजनं क्रियते कथम् ? ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 510]

— *उपदेश प्रासाद - 1*

स्वजन के मरने पर भी सूतक होता है, तो फिर सूर्य के अस्त होने पर (मर जाने पर) भोजन कैसे किया जाए ?

303. रात्रि-भोजन त्याज्य

संति मे सुहुमा पाणा, तसा अदुवा थावरा ।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणिअं चरे ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 510]

— *दशवैकालिक 6/23*

संसार में बहुत से त्रस और स्थावर प्राणी अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, वे रात्रि में दृष्टिगत नहीं होते तो फिर रात्रि में भोजन कैसे किया जा सकता

304. रात्रि-भोजन-फल

उलूक-काक-मार्जार-गृध-शम्बर शूकराः ।
अहि-वृश्चिक-गोधाश्च जायन्ते रात्रिभोजनात् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 510]

— *योगशास्त्र - 3/67*

रात्रि भोजन करने से मनुष्य मरकर उल्लू, काक, बिल्ली, गीध, सम्बर, शूकर, सर्प, बिच्छू और गोह आदि अधम गिने जाने वाले तिर्यंचों के रूप में उत्पन्न होते हैं ।

305. वैज्ञानिक दृष्टि से वर्जित

हृन्नाभिपद्म संकोचश्चण्डरोचिरपायतः ।
अतो नक्तं न भोक्तव्यं सूक्ष्मजीवादनादपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 510]

— *योगशास्त्र 3/60*

सूर्यास्त हो जाने पर शरीर स्थित हृदय-कमल एवं नाभि-कमल सिकुड़ जाते हैं और उस भोजन के साथ सूक्ष्म जीव भी खाने में आ जाते हैं । इसलिए भी रात्रि-भोजन नहीं करना चाहिए ।

306. तीर्थ-यात्रा-फल

एक भक्ताशनान्नित्यमग्निहोत्रफलं भवेत् ।
अनस्तभोजननित्यं; तीर्थयात्रा फलं लभेत् ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 510]
— *स्कन्दपुराण-कपालमोचनस्तोत्र*

हमेशा एकबार भोजन करने से अग्निहोत्र का फल मिलता है और जो सूर्यास्त के पूर्व भोजन करते हैं, उन्हें हमेशा तीर्थयात्रा का फल मिलता है ।

307. रात्रि-वर्जित कार्य

नैवा हुति र्न च स्नानं, न श्राद्धं देवतार्चनम् ।
दानं वा विहितं रात्रौ, भोजनं तु विशेषतः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 510]
— *योगशास्त्र 3/56*

रात्रि में होम, स्नान, श्राद्ध, देवपूजन या दान करना उचित नहीं है, किन्तु भोजन तो विशेष रूप से निषिद्ध है ।

308. रात्रि-भोजन वर्जित

सव्वाहारं न भुंजंति, निग्गंथा राइ भोअणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 510]
— *दशवैकालिक 6/26*

निर्ग्रंथ मुनि, रात्रि के समय किसी भी प्रकार का आहार नहीं करते।

309. रोगोत्पत्ति-कारण

णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया -
अच्चासणाते
अहितासणाते
अतिणिद्दाए
अतिजागरितेण
उच्चार निरोहेण

पासवण निरोहेण
अद्धाण गमणेणं
भोयण पडिकूलताए
इंदियत्थ विकोवणयाते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 579]

— *स्थानांग - 9/9/667*

नौ कारणों से रोगों की उत्पत्ति होती हैं। जैसे -

(१) अधिक बैठे रहने से या अधिक भोजन करने से।
(२) अहितकर आसन से बैठने से या अहितकर भोजन करने से।
(३) अति निद्रा से।
(४) अति जागरण से।
(५) मलवेग को रोकने से।
(६) मूत्र के वेग को रोकने से।
(७) अधिक भ्रमण (मार्ग गमन)से।
(८) भोजन की प्रतिकूलता से।
(९) अतिविषय से या कामविकार से।

310. कर्मण की गति न्यारी !

माता भूत्वा दुहिता, भगिनी भार्या च भवति संसारे।
व्रजति च सुतः पितृत्वं, भ्रातृत्वं पुनः शत्रुतां चेव ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 594]

— *प्रशमरति 156*

कर्मानुसार संसार में जीव पूर्वजन्म की माता, जन्मान्तर में बेटी-बहन और पत्नी बनती है....और पुत्र मरकर पिता, भ्राता तथा शत्रु बनता है। इसप्रकार कर्म का चक्र चलता रहता है।

311. यथा आकृति तथा गुण

यथा नेत्रे तथा शीलं, यथा नासा तथार्जवम्।
यथा रूपं तथा वित्तं, यथाशीलं तथा गुणः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 595]
— *कल्पसुबोधिका सटीक श्लोक 2*

व्यक्ति के जैसे नेत्र होते हैं वैसा ही उसका सदाचार होता है, जैसी नासिका होती है वैसी ही सरलता होती है। जैसा रूप सौन्दर्य होता है वैसा ही धन होता है और जैसा शील-सदाचार होता है, ठीक वैसे ही उसमें गुण होते हैं।

312. गर्जत सो वर्षत नहीं

गर्जति शरदि न वर्षति, वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते, न वदति साधु करोत्येव ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 697]
— *कल्पसुबोधिका टीका - 1/5*
नीतिद्विषष्टिका (अनुबन्ध - 29)

बादल शरदऋतु में केवल गरजता है, बरसता नहीं और वर्षाऋतु में बिना गरजे ही बरसता है। इसीतरह नीच व्यक्ति बोलता है, करता कुछ नहीं, परन्तु सज्जन पुरुष बोलता नहीं, किन्तु करता है।

313. थोथा चना बाजे घणा

असारस्य पदार्थस्य, प्रायेणाडम्बरो महान् ।
न हि स्वर्णे ध्वनिस्तादृग्, यादृक् कांस्ये प्रजायते ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 697]
— *कल्पसुबोधिका टीका 1/5*
यशस्तिलक चंपू 1/35

निःसार पदार्थ का प्रायः आडम्बर अधिक होता है। सोने की उतनी आवाज नहीं होती, जितनी आवाज काँसी के बर्तन में होती है।

314. हाथ कंगन को आरसी क्या ?

'मातुः पुरो मातुलवर्णनं तत् ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 697]
— *कल्पसुबोधिका 1/5*

माता के सामने मामा का वर्णन करना वाणी का विलास है।

315. जीवाजीवाधार

अजीवा जीव पइट्ठिया, जीवा कम्म पइट्ठिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 714]

— ***भगवतीसूत्र 1/6***

जड़ पदार्थ जीव के आधार पर रहे हुए हैं और जीव (संसारी प्राणी) कर्म के आधार पर रहे हुए हैं ।

316. न भूतो न भविष्यति

णं एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा,
जं जीवा अजीवा भविस्संति,
अजीवा वा जीवा भविस्संति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 715]

— ***स्थानांग - 10/10/704***

न ऐसा कभी हुआ है, न होना है और न कभी होगा ही कि जो चेतन हैं वे कभी अचेतन-जड़ हो जाएँ और जो जड़-अचेतन हैं वे कभी चेतन हो जाएँ ।

317. पुद्‌गल-स्वभाव

सुरुवा पोग्गला दुरुवत्ताए परिणमंति ।
दुरुवा पोग्गला सुरुवत्ताए परिणमंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 721]

— ***ज्ञाताधर्मकथा - 1/12***

सुरुप पुदगल (सुन्दर वस्तुएँ) कुरुपता में परिणत होते रहते हैं और असुन्दर वस्तुएँ सुरुपता में ।

318. शीलसम्पन्न विनीत

सुविसुद्धसीलजुत्तो पावइ कीत्तिं जसं च इहलोए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 722-1181]

— ***धर्मरत्न प्रकरण 1/8***

सुविशुद्ध शील-सदाचार सम्पन्न विनीत व्यक्ति इस लोक में यश कीर्ति पाता है और सबका प्रिय बन जाता है एवं परलोक में भी सद्‌गति का भागी बनता है।

319. लोक-स्वरूप

अणंते नितिए लोए, सासए न विणस्सइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 723]

— *सूत्रकृतांग 1/1/4/6*

यह लोक द्रव्य की अपेक्षा से अनंत, नित्य और शाश्वत है। इसका कभी नाश नहीं होता।

320. कषाय चौकड़ी-वर्जन

उक्कसं जलणं णूमं, मज्झत्थं च विगिंचए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 724]

— *सूत्रकृतांग - 1/1/4/12*

संयमरत साधक क्रोध-मान माया और लोभ का परित्याग करें।

321. जन्म-मरण-चक्र

माया मेत्ति पिया मे, भगिणी भाया य पुत्तदारा मे ।
अत्थम्मि चेव गिद्धा, जम्ममरणाणि पावंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 725]

— *आचारांग निर्युक्ति 186 पृ. 67*

माता-पिता, भगिनी, भ्राता, पत्नी पुत्रादि एवं धन में जो आसक्त हैं, वे जन्म-मरण को प्राप्त करते हैं।

322. आज्ञारहित मुनि

अणाणाए मुणिणो पडिलेहंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 727]

— *आचारांग 1/2/2*

वीतराग आज्ञा से बाहर मुनि विषयों की ओर ताकने लगते हैं।

323. मोहावृत्त पुरुष

मंदा मोहेण पाउडा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 727]

— ***आचारांग** - 1/2/2*

मंदमति मनुष्य मोह से घिरे हुए होते हैं ।

324. मुक्त कौन ?

विमुत्ता हु ते जणा जे जणापारगामिणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 727]

— ***आचारांग** 1/2/2/74*

जो जन कामनाओं को पार कर गए हैं, वे निश्चय ही मुक्त हैं ।

325. निष्काम साधक

लोभमलोभेण दुगुंछमाणे लद्धे कामे नाभिगाहइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 727]

— ***आचारांग** - 1/2/2/74*

अलोभ से लोभ को तिरस्कृत करनेवाला साधक प्राप्त काम-भोगों का भी सेवन नहीं करता ।

326. न घर का न घाट का

एत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना, नो हव्वाए नो पाराए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 727]

— ***आचारांग** - 1/2/2/73*

बार-बार मोहग्रस्त होनेवाले व्यक्ति न इस पार आ सकते हैं और न ही उस पार जा सकते हैं ।

327. ज्ञाता-द्रष्टा

विणा वि लोभं नीक्खम एस अकम्मे जाण पासइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 727]

— ***आचारांग** - 1/2/2/75*

जिस साधक ने लोक-परलोक की बिना किसी कामना के निष्क्रमण किया है, प्रव्रज्या ग्रहण की है; वह अकर्म (बन्धन-मुक्त) होकर सब कुछ देखता है; जानता है अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा हो जाता है ।

328. अस्थिर साधक

अणाणाए पुट्ठावि एगे नियटंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 727]

— ***आचारांग - 1/2/2/73***

कुछ साधक संकट आने पर धर्मशास्त्र की अवज्ञा कर वापस घर में भी चले जाते हैं ।

329. परिग्रह से अलिप्त

जहेत्थ कुसले नोवलिंपिज्जासि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 728]

— ***आचारांग - 1/2/2/76-1/2/5/91***

आर्य मार्ग पर चलनेवाला कुशल व्यक्ति परिग्रह में लिप्त नहीं होता ।

330. जीव, सुखप्रिय

भूएहिं जाण पडिलेह सायं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 729]

— ***आचारांग - 1/2/3***

प्रत्येक जीव को सुख/शाता प्रिय है, यह देखो और उसपर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करो ।

331. न कोई हीन, न कोई महान्

णो हीणे णो अइरित्ते णो अपीहिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 729]

— ***आचारांग 1/2/3***

न तो कोई हीन है और न कोई महान् । इसलिए साधक उच्च गोत्र की स्पृहा न करें ।

332. ऊँचं-नीच गोत्र में जन्म

से असइं उच्चगोए, से असइं नीआगोए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 729]

– *आचारांग 1/2/3/77*

यह जीवात्मा अनेक बार उच्च गोत्र में और अनेक बार नीच गोत्र में जन्म ले चुकी है ।

333. न हर्षित, न कुपित

तम्हा पंडिए नो हरिसे नो कुप्पे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 729]

– *आचारांग 1/2/3/77*

साधक को उच्च या निम्न किसी भी परिस्थिति में न हर्षित होना चाहिए और न ही कुपित ।

334. उपदेश

जाइ मरणं परिण्णाय, चरे संकमणे दढे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 731]

– *आचारांग 1/2/3*

जन्म-मरण के स्वरूप को भली भाँति जानकर दृढ़तापूर्वक मोक्ष पथ पर बढ़ते रहें ।

335. मन्दबुद्धि विवेकशून्य

कुराइं कम्माइं बाल पकुव्वमाणे तेण
दुक्खेण संमूढं विप्परियासमुवेइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 731-741]

– *आचारांग 1/2/4, 1/2/3, 1/5/6, 1/5/1*

मंद बुद्धिवाला क्रूर कर्म करता हुआ और उसी दुःख से विवेक शून्य होकर अन्त में विपरीत दशा को प्राप्त होता है ।

336. राग-द्वेषी, भवपार नहीं

अपारंगमा एए नो य पारंगमित्तए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 731]

— *आचारांग 1/2/3*

जो राग-द्वेष को पार नहीं कर पाए हैं, वे संसार-सागर से पार नहीं हो सकते ।

337. मृत्यु, मेहमान

नत्थि कालस्सणागमो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 731]

— *आचारांग 1/2/3*

मृत्यु किसी भी समय आ सकती है । उसके लिए कोई भी क्षण निश्चित नहीं है ।

338. शाश्वत सुखाकांक्षी

इणमेव नावकंखंति जे जणा धुवचारिणो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 731]

— *आचारांग 1/2/3/80*

जो पुरुष शाश्वत सुख-केन्द्र मोक्ष की ओर गतिशील होते हैं वे ऐसा विपर्यासपूर्ण (सुख के बदले दुःख पूर्ण) जीवन नहीं चाहते ।

339. भवपार नहीं

अणोहंतरा एए नो य ओहं तरित्तए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 731]

— *आचारांग 1/2/3*

जो मनुष्य वासना के प्रवाह को नहीं तैर सकते हैं, वे संसार के प्रवाह को कभी नहीं तैर सकते ।

340. मूढ़, सत्य-पथ में स्थित नहीं

आयाणिज्जं च आयायतंमि ठाणे न चिट्ठइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 731]

— *आचारांग 1/2/3*

मूढ़ पुरुष सत्य-मार्ग को प्राप्त करके भी उस स्थान में स्थित नहीं हो पाता ।

341. अज्ञ साधक

वितहं पण्णऽखेयन्ने तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 731]

— ***आचारांग 1/2/3/80***

अज्ञानी साधक जब कभी असत्य विचारों को सुन लेता है तो वह उन्हीं में उलझ कर रह जाता है ।

342. किनारे नहीं

अतीरंगमा ए ए नोय तीरं गमित्तए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 731]

— ***आचारांग 1/2/3***

इन्द्रिय जन्य काम-भोगों में जो डूबे हुए हैं, वे संसारसागर के तट पर नहीं पहुँच सकते ।

343. लक्ष्मी जाने के मार्ग

तंपि से एगया दायाया विभयंति अदत्तहारो वा अवहरंति रायाणो वा से विलुपंति, णस्सति वा से विणस्सति वा से अगार दाहेण वा से डज्झति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 731]

— ***आचारांग 1/2/3***

जीवन में कभी एक समय ऐसा आता है कि परिग्रहासक्त व्यक्ति द्वारा संग्रहित संपत्ति में से दायाद-बेटे-पोते हिस्सा बँटा लेते हैं, चोर चुरा लेते हैं, राजा उसे छीन लेते हैं या वह अन्य प्रकार (दुर्व्यसनादि) से नष्ट-विनष्ट हो जाती है या कभी गृह-दाह आदि से जलकर भस्म हो जाती है ।

344. तत्त्वद्रष्टा

उद्देसो पासगस्स नऽत्थि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 732]

— ***आचारांग 1/2/3/81***

तत्त्वद्रष्टा को किसी के उपदेश की अपेक्षा नहीं होती है ।

345. देह-अशुचिता

अंतो अंतो पूइ देहंतराणि पासति पूढो वि संवताइं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 733]

— ***आचारांग 1/2/5***

मनुष्य इस शरीर के भीतर से भीतर अशुचिता देखता है और शरीर से झरते हुए अलग-अलग अशुचि स्रोतों (अन्तरों) को भी देखता है । पण्डित इसका चिन्तन करे ।

346. वीर-प्रशस्ति

एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 733]

— ***आचारांग 1/2/5/93***

वह वीर प्रशंसा पात्र होता है जो स्वयं को तथा दूसरों को बंधन मुक्त करवाता है ।

347. काम, दुर्लंघ्य

कामा दुरतिक्कमा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 733]

— ***आचारांग 1/2/5/92***

कामनाओं का पार पाना बड़ा कठिन है ।

348. प्रतिकार

जीवियं दुप्पडिबूहगं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 733]

— ***आचारांग 1/2/5/92***

नष्ट होते जीवन का कोई प्रतिकार नहीं है ।

349. काम की मृगतृष्णा

काम कामी खलु अयं पुरिसे,
से सोयइ जुरइ तिप्पइ परितप्पइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 733]

— *आचारांग 1/2/5/92*

जो पुरुष काम भोग की कामना रखता है किन्तु वह तृप्त नहीं हो सकती, इसलिए वह शोक करता है, शरीर से सूख जाता है, आँसू बहाता है, पीड़ा और पश्चात्ताप से दु:खी होता रहता है।

350. बाहर भीतर असार

जहा अंतो तहा बाहिं,
जहा बाहिं तहा अंतो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 733]

— *आचारांग 1/2/5/93*

यह शरीर जैसा अन्दरमें असार है, वैसा ही बाहर मे है। जैसा बाहर में असार है, वैसा ही अन्दर में असार है।

351. अजर-अमर मान्यता

अमराइय महासड्ढी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 734]

— *आचारांग 1/2/5*

भोग और अर्थ में महान श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति स्वयं को अमर तुल्य मानने लगता है।

352. परित्यक्त काम-भोग

से मइमं परिन्नाय मा य हु लालं पच्चासी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 734]

— *आचारांग 1/2/5/94*

बुद्धिमान साधक लार चाटनेवाला न बने अर्थात् परित्यक्त भोगों की पुनः कामना न करे।

353. स्वयंकृत मकड़ी-जाल

सएण विप्पमाएण पूढोवयं पकुव्वइ,
जंसि मे पाणा पव्वहिता ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 735]

— *आचारांग 1/2/6*

मूर्ख मानव अपने अति प्रमाद के कारण जन्म-शृंखला का निर्माण करता है जहाँ पर प्राणी अत्यन्त दुःख भोगते हैं।

354. स्वकृत व्यथा

सएण दुक्खेण मुढे विप्परियासेइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 735]

— *आचारांग 1/2/6*

मूर्ख व्यक्ति स्वकृत व्यथा से ही विपरीत स्थिति प्राप्त करता है।

355. असत्कर्म त्याज्य

पावकम्मं नेव कुज्जा न कारवेज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 735]

— *आचारांग 1/2/6/96*

पाप कर्म अर्थात् असत्कर्म न स्वयं करे न दूसरे से करवाए।

356. ममत्त्व विजेता

से हु दिट्ठे पहे मुणी जस्स णत्थि ममाइयं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 736]

— *आचारांग 1/2/6*

जिसके पास ममत्व-परिग्रह नहीं है वस्तुतः वही मुनि मोक्ष-मार्ग का द्रष्टा है।

357. वीर निर्विकल्प

अविमणे वीरे तम्हा वीरे न रज्जइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 736]

— *आचारांग 1/2/6*

वीर पुरुष निर्विकल्प होता है, इसलिए वह किसी में रत नहीं होता है।

358. ममत्त्व-त्याग

जे ममाइयमइं जहाइ से चयइ ममाइयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 736]

— *आचारांग 1/2/6/98*

जो ममत्त्व बुद्धि का त्याग करता है । वस्तुत वही ममत्त्व का त्याग कर सकता है । वही मुनि यथार्थ में पथ का द्रष्टा है, जो किसी भी प्रकार का ममत्त्व भाव नहीं रखता है ।

359. लोकैषणा-त्याग

वंता लोगसन्नं, से मइमं परिक्कमेज्जासि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 736]

— *आचारांग 1/2/6, 1/2/4 एवं 1/3/1*

बुद्धिमान पुरुष लोकैषणा को छोड़कर संयम में पुरुषार्थ करे ।

360. वीरसाधक असहिष्णु

णारतिं सहती वीरे, वीरे न सहइ रतिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 736]

— *आचारांग 1/2/6/98*

वीर साधक संयम के प्रति अरुचि को सहन नहीं करता और विषयों की अभिरुचि को भी सहन नहीं करता ।

361. लोकरंजनार्थ धर्म-त्याग

यथा चिन्तामणिं दत्ते, बठरो बदरीफलैः ।
इहा जहाति सद्धर्मं, तथैव जनरञ्जने ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 740]

— *ज्ञानसार - 23/2*

जैसे कोई मूर्ख बेर के बदले में चिंतामणि रत्न बेच देता है, ठीक वैसे ही कोई मूर्ख लोकरंजन के लिए अमूल्य चिंतामणि रूप अपने धर्म को छोड़ देता है ।

362. विरले आत्मरत्नपारखी

स्तोकाहि रत्नवणिजः स्तोकाश्च स्वात्मसाधका ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 740]

— *ज्ञानसार 23/5*

जैसे रत्न की परख करनेवाले जौहरी बहुत कम होते हैं वैसे ही आत्मोन्नति हेतु प्रयत्न करनेवालों की संख्या न्यून ही होती है ।

363. राजहंसवत् महामुनि

लोकसंज्ञामहानद्यामनुश्रोतोऽनुगा न के ।
प्रतिश्रोतोऽनुगस्त्वेको, राजहंसो महामुनिः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 740]

— *ज्ञानसार 23/3*

लोकसंज्ञा रूपी महानदी में लोकप्रवाह का अनुसरण करनेवाले भला कौन नहीं हैं ? प्रवाह-विरुद्ध चलनेवाले राजहंस के समान मात्र मुनीश्वर ही हैं ।

364. ज्ञान का सार

नाणं संजमं सारं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 741]

— *आचारांग निर्युक्ति 245 पृ 132*

ज्ञान का सार संयम है ।

365. संयम से निर्वाण

संजमसारं च निव्वाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 741]

— *आचारांग निर्युक्ति 245 पृ 132*

सारभूत चारित्र से निर्वाण पद की प्राप्ति होती है ।

366. जीवन अस्थिर, जलबिन्दुवत्

से पासति फुसियमिव कुसग्गे पणुन्नं निवइयं वाएरियं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 741]

— *आचारांग 1/5/1*

ज्ञानी पुरुष जीवन को कुश की नोक पर टिके हुए अस्थिर और वायु के झोंके से कम्पित होकर गिरे हुए जल-बिंदु की भाँति देखता है।

367. मुनि, सदा सुखी

लोकसंज्ञोज्झितः साधुः परब्रह्मसमाधिमान् ।
सुखमास्ते गतद्रोह ममतामत्सरज्वरः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 741]

— *ज्ञानसार 23/8*

जिनका द्रोह, ममता और द्वेष रूपी ज्वर चला गया है तथा जो लोक संज्ञा से रहित परब्रह्म में समाधिस्थ हैं, ऐसे मुनि सदा-सर्वदा सुखी रहते हैं।

368. सकामी-निष्कामी

गुरु से कामा, तओ से मारं ते,
जओ से मारं ते तओ से दूरे,
नेव से अंतो नेव दूरे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 741]

— *आचारांग 1/5/1/141*

जिनकी कामनाएँ तीव्र होती हैं, वह मृत्यु से ग्रस्त होता है और जो मृत्यु से ग्रस्त होता है, वह शाश्वत सुख से दूर रहता है, परन्तु जो निष्काम होता है, वह न तो मृत्यु से जकड़ा होता है और न शाश्वत सुख से दूर।

369. सारभूत धर्म

लोगस्स सार धम्मो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 741]

— *आचारांग निर्युक्ति 245 पृ. 132*

समग्र विश्व में सारभूत तत्त्व एकमात्र धर्म है।

370. सारभूत ज्ञान

धम्मंपि य नाणं सारियं विंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 741]

— *आचारांग निर्युक्ति 245 पृ 132*

धर्म में भी सारभूत तत्त्व ज्ञान है ।

371. मूर्ख-धारणा

एत्थवि बाले परिपच्चमाणे रमति
पावेहिं कम्मेहिं असरणे सरणंति मन्नमाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 742]

— *आचारांग 1/5/1*

मूर्ख दुःखों में पचता रहता है, फिर भी पाप करने में आनंद मानता है, अशरण को भी शरण मानता है ।

372. मोह

एत्थ मोहे पुणो पुणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 742]

— *आचारांग 1/5/1*

इस जन्म-मरण की परंपरा में मोह बार-बार आकर्षित करता रहता है ।

373. रूपासक्ति-परिणाम

एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे एत्थ फासे पुणो पुणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 742]

— *आचारांग 1/5/1*

जो मनुष्य रूपादि इन्द्रिय-विषयों में आसक्त हैं, वे विषयों में खिंचे जा रहे हैं और इस प्रवाह में बार-बार दुर्गति के दुःखों को भोगते रहते हैं ।

374. कुशल कौन ?

जे छेए सागारियं न सेवइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 742]

— *आचारांग 1/5/1/144*

जो कुशल है, वह काम-भोग का सेवन नहीं करता।

375. संशय-परिज्ञान

संसयं परिआणओ संसारे परिण्णाए भवइ ।

संसयं अपरियाणओ संसारे अपरिण्णाए भवइ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 742]

— *आचारांग 1/5/1/143*

जिसे संशय का परिज्ञान हो जाता है, उसे संसार के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। जो संशय को नहीं जानता, वह संसार को भी नहीं जान पाता।

376. उठो, प्रमाद मत करो

उट्ठिए नो पमायए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 743]

— *आचारांग 1/5/2/146*

जो कर्तव्य-पथ पर उठकर खड़ा हो चुका है, उसे पुन: प्रमाद नहीं करना चाहिए।

377. मनुष्य-रूचि

पुढो छंदा इह माणवा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 743]

— *आचारांग 1/5/2/146*

इस संसार में मनुष्य भिन्न-भिन्न विचारवाले हैं।

378. दु:ख-सुख अपना

जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 743]

— *आचारांग 1/2/4/82 एवं 1/2/1/68*

प्रत्येक व्यक्ति का दु:ख-सुख अपना-अपना है।

379. शक्ति-सदुपयोग

नो निहणिज्ज वीरियं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 744]

– *आचारांग 1/5/3/151*

साधक को अपनी शक्ति कभी नहीं छुपाना चाहिए ।

380. समभाव, धर्म

समियाए धम्मे आयरिए पवेइए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 744]

– *आचारांग 1/8/3/207*

एवं 1/5/3/151

आर्य महापुरुषों ने समभाव में धर्म कहा है ।

381. संशयात्मा, समाधिस्थ नहीं !

वितिगिच्छं समावन्नेणं अप्पाणेणं नो लहइ समाहिं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 745]

– *आचारांग 1/5/5/161*

संशयात्मा को कभी समाधि नहीं मिलती ।

382. मिथ्यादृष्टि

असमियंति मन्नमाणस्स समिआ
वा असमिआ होइ उवहाए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 747]

– *आचारांग 1/5/5*

व्यवहार वास्तव में सम्यग् हो या असम्यग्, किंतु असम्यक्त्व को माननेवाले के लिए माध्यस्थभाव के कारण वह मिथ्यात्व रूप ही होता है ।

383. आत्मा, शाश्वत

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता न भूयः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 747]

— *भगवद्गीता 2/20*

यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है। एकबार अस्तित्व में आ जाने के बाद उसका अस्तित्व फिर कभी समाप्त नहीं होता।

384. बालभाव

बालभावे अप्पाणं नो उवदंसिज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 747]

— *आचारांग 1/5/5*

तुम अज्ञान दशा में अपने आपको प्रदर्शित मत करो।

385. सम्यग्दृष्टि

समियंति मन्नमाण समिया वा

असमिया वा समिया होइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 747]

— *आचारांग 1/5/5*

सम्यग् दृष्टि आत्मा के लिए सत्य हो या असत्य, सभी सत्य रूप में ही परिणत हो जाया करते हैं।

386. तू ही तू !

तुमंसि नाम सच्चेव जं हन्तव्वं ति मन्नसि,

तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि,

तुमंसि नाम सच्चेव जं परियावेयव्वं ति मन्नसि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 747]

— *आचारांग 1/5/5/164*

जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है। जिसे तू शासित करना चाहता है, वह तू ही है और जिसे तू परिताप देना चाहता है, वह भी तू ही है। (स्वरूप दृष्टि से सभी चैतन्य एक समान है। यह अद्वैतभाव ही अहिंसा का मूलाधार है।)

387. ऋजु, प्रतिबुद्धजीवी

अंजु चेय पडिबुद्धजीवी तम्हा ण हंता ण विघातए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 747]

— ***आचारंग 1/5/5***

मुनि ऋजु (सरलात्मा) तथा प्रतिबुद्धजीवी होता है । इसलिए वह स्वय हनन नहीं करता है और नहीं दूसरों से करवाता है ।

388. श्रद्धाशील वीर

णिट्ठियट्ठी वीरे आगमेण सया परक्कमे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 748]

— ***आचारंग 1/5/6***

निष्ठितार्थी (श्रद्धाशील) वीर पुरुष सदा आगम निर्दिष्ट आदेश - निर्देशानुसार पराक्रम करें ।

389. आगमविद्

आवट्टं तु पेहाए एत्थ विरमिज्ज वियवी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 748]

— ***आचारंग 1/5/6***

आगमविद् पुरुष संसार चक्र को देखकर विषय-भोगों से दूर रहें ।

390. आदेश अनतिक्रमण

निद्देसं नाइवट्टेज्जा मेहावी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 748]

— ***आचारंग 1/5/6***

बुद्धिमान कभी भी जिनेश्वरादि के आदेश-उपदेश का अतिक्रमण नहीं करें ।

391. आसक्ति, कर्मास्त्रव द्वार

उड्ढं सोया अहे सोया तिरियं सोया वियाहिया
एए सोया.... अक्खाया जेहिं संगंतिया सह ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 748]
— *आचारांग 1/5/6/168*

ऊपर (आसक्ति के) स्रोत हैं, नीचे भी वही स्रोत हैं; मध्य में भी वही आसक्ति के स्थान हैं। वे कर्मों के आस्रव द्वार कहे गए हैं। इनके द्वारा समस्त प्राणियों में आसक्ति पैदा होती है।

392. आत्मा, अनिर्वचनीय

सव्वे सरा नियट्टंति,
तक्का जत्थ न विज्जइ ।
मई तत्थ न गाहिया ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 748]
— *आचारांग 1/5/6/170*

आत्मा के वर्णन में सब के सब स्वर-शब्द निवृत्त हो जाते हैं - समाप्त हो जाते हैं। वहाँ तर्क की गति भी नहीं है और न बुद्धि ही उसे ठीक तरह ग्रहण कर पाती है और कोई उपमा भी उसके लिए विद्यमान नहीं है।

393. आत्मा, अवाच्य

अरूपी सता अपयस्सपयं नत्थि ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 749]
— *आचारांग 1/5/6*

आत्मा अरूपी सत्तावाला है। उसे कहने के लिए कोई शब्द नहीं है। वह वास्तव में अवाच्य है।

394. लोभजय-फल

लोभ विजएणं सन्तोसीभावं जणयइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 755]
— *उत्तराध्ययन 29/70*

लोभ को जीतने से संतोष गुण की प्राप्ति होती है।

395. वचन गुप्त कौन ?

वयण विभत्ती कुसलो, वओगयं बहुविहं विआणंतो।
दिवसं पि भासमाणो, तहावि वइगुत्तयं पत्तो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 758]
— *दशवैकालिक निर्युक्ति 291*

जो वचन-कला में कुशल है और वचन की मर्यादा का जानकार है, वह दिनभर भाषण करता हुआ भी 'वचन गुप्त' कहलाता है।

396. वचनगुप्ति-फल

वइगुत्तयाएणं निव्विकारत्तं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 769]
— *उत्तराध्ययन 29/54*

वचन-गुप्ति से निर्विकार स्थिति प्राप्त होती है।

397. निर्विकार से ध्यान

निव्वियारेणं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोगसाहण
जुत्ते यावि भवइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 769]
— *उत्तराध्ययन 29/54*

निर्विकार होने पर जीव सर्वथा वचनगुप्त तथा अध्यात्म योग के साधनभूत ध्यान से युक्त होता है।

398. वन्दन से लाभ

वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ ।
उच्चागोयं कम्मं निबंधइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 770]
— *उत्तराध्ययन 29/10*

वन्दन से आत्मा नीच गोत्र कर्म को क्षय करती है और उच्च गोत्र कर्म का अर्जन करती है।

399. मनुष्य-वनस्पति तुलना

इमंपि जाइ धम्मयं, एयंपि जाइ धम्मयं ।
इमंपि वुड्ढि धम्मयं, एयंपि वुड्ढि धम्मयं ।
इमंपि चित्तमंत यं, एयंपि चित्तमंत यं ।
इमंपि छिन्नं मिलाति, एयंपि मिलती ।
इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं ।
इमंपि अणिच्चयं, एयंपि अणिच्चयं ।
इमंपि असासयं, एयं पि असासयं ।
इमंपि चयावचइयं, एयंपि चयावचइयं ।
इमंपि विपिरणाम धम्मयं, एयंपि विपरिणाम धम्मयं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 506-507]

— *आचारांग* 1/1/5

यह मनुष्य भी जन्म लेता है, यह वनस्पति भी जन्म लेती है ।
यह मनुष्य भी बढ़ता है, यह वनस्पति भी बढ़ती है ।
यह मनुष्य भी चेतना युक्त है, यह वनस्पति भी चेतनायुक्त है ।
यह मनुष्य शरीर छिन्न होने पर म्लान हो जाता है, यह वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है ।

यह मनुष्य भी आहार करता है, यह वनस्पति भी आहार करती है ।

यह मनुष्य शरीर भी अनित्य है, यह वनस्पति का शरीर भी अनित्य है ।

यह मनुष्य शरीर भी अशाश्वत है, यह वनस्पति शरीर भी अशाश्वत है ।

यह मनुष्य शरीर भी आहार से बढ़ता है और आहार के अभाव में दुर्बल होता है ।

यह वनस्पति शरीर भी उपचित-अपचित (बढ़ता है, दुर्बल) होता है ।

यह मनुष्य शरीर भी विविध अवस्थाओं को प्राप्त होता है और यह वनस्पति शरीर भी विविध अवस्थाओं को प्राप्त होता है ।

400. भोगास्वादी

पुणो पुणो गुणासए वंकसमायरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 806]

— *आचारांग 1/1/5*

जो बार-बार इन्द्रियों के विषयों का आस्वादन करता है वह कुटिल आचरणवाला है ।

401. दिखाउ त्यागी

पमत्ते अगारमावसे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 806]

— *आचारांग 1/5*

जो प्रमादी है, दिखाउ त्यागी है अर्थात विषय रूपी विष से मूर्च्छित है, वह गृहत्यागी होकर भी वास्तव में गृहवासी ही है ।

402. जैसा योग वैसा बंध

जह जह्य अप्पतरा से जोगा,
तह्य तह्य अप्पतरो से बंधो ।
निरुद्ध जोगिस्स व जो ण होति,
अछिद्दपोतस्स य अम्बुणोधे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 870]

— *बृह. भाष्य 3926*

जैसे-जैसे मन, वचन व काया के योग (संघर्ष) अल्पतर होते जाते हैं वैसे-वैसे बंध भी अल्पतर होता जाता है । योग चक्र का पूर्णत निरोध होने पर आत्मा में बंध का सर्वथा अभाव हो जाता है, जैसे समुद्र में रहे हुए अछिद्र जलयान में जलागमन का अभाव हो जाता है ।

403. द्रव्य-भाव हिंसा का स्वरूप

आहच्च हिंसा समितस्स जा उ,
सा दव्वतो होति णं भावतो उ ।

भावे न हिंसा तु असंजतस्स,
जं वा ऽ वि सत्तेण स दाव चेति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 871]

— ***बृह. भाष्य 3963***

संयमी साधक के द्वारा कभी हिंसा हो भी जाय तो वह द्रव्य हिंसा होती है, भाव हिंसा नहीं, किन्तु जो असंयमी है, वह जीवन में कभी किसी का वध न करने पर भी भाव रूप से सतत हिंसा करता रहता है।

404. व्रती-अव्रती की हिंसा में अन्तर

जाणं करेति एक्को, हिंसमजाणं पुणो अविरतो य।
तत्थवि बंधविसेसो, महंतरं देसितो समए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 871]

— ***बृह. भाष्य 3938***

एक अविरत (असंयमी) जानकर हिंसा करता है और दूसरा विरत (संयमी) अनजान में। शास्त्र में इन दोनों के हिंसाजन्य कर्मबंध में महान् अन्तर बताया है अर्थात् तीव्र भावों के कारण जानने वाले का अपेक्षाकृत कर्मबंध तीव्र होता है।

405. अप्रमत्त, निर्जराभागी

विरतो पुण जो जाणं, कुणति अजाणं च अप्पमत्तो य।
तत्थ वि अज्झत्त समा, संजायति णिज्जराण चओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 872]

— ***बृह. भाष्य 3939***

अप्रमत्त संयमी चाहे जान में (अपवाद स्थिति में) हिंसा करे या अनजान में, उसे अन्तरंग शुद्धि के अनुसार निर्जरा ही होगी, बंध नहीं।

406. बल जैसा भाव

देहबलं खलु वीरियं,
बल सरिसो चेव होति परिणामो।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 873]

— *बृह. भाष्य 3948*

देह का बल ही वीर्य है और बल के अनुसार ही आत्मा में शुभाशुभ भावों का तीव्र या मंद परिणमन होता है।

407. संयमी की प्रवृत्ति निर्दोष

संजम हेऊ जोगो, पउंजमाणो अदोसयं होइ ।
जह आरोग्य निमित्तं, गंडच्छेदोव विज्जस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 874]

— *बृह. भाष्य 3951*

संयम निर्वाह हेतु की जानेवाली प्रवृत्तियाँ निर्दोष होती हैं, जैसे कि वैद्य के द्वारा किया जानेवाला व्रणच्छेद (फोड़े का ऑपरेशन) आरोग्य के लिए होने से निर्दोष होता है।

408. असंग्रही साधक

विडमुब्भेइमं लोणं तेल्लं सप्पिं च फाणियं ।
न ते सन्निहि मिच्छन्ति, नायपुत्त वओरया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 887]

— *दशवैकालिक 6/17*

जो लोग महावीर के वचनों में अनुरक्त हैं वे मक्खन, नमक, तेल, घृत, गुड़ आदि किसी वस्तु के संग्रह करने का मन में संकल्प तक नहीं लाते।

409. परपीड़क सत्यासत्य-वर्जन

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं न मूसं बूया, नो वि अन्नं वयावए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 887]

— *दशवैकालिक 6/11*

निर्ग्रन्थ अपने स्वार्थ के लिए या दूसरों के लिए क्रोध से या भय से किसी प्रसंग पर दूसरों को पीड़ा पहुँचानेवाला सत्य या असत्य वचन न तो स्वयं बोले, न दूसरों से बुलवाए।

410. संयमोपकरण क्यों ?

जं पि वत्थं च पायं वा, कंबलं पायपुच्छनं ।
जं पि संजमलज्जट्ठा, धारन्ति परिहरन्ति य ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 887]
— ***दशवैकालिक 6/20***

जो भी वस्त्र, पात्र, कंबल और रजोहरण हैं, उन्हें मुनि संयम और लज्जा की रक्षा के लिए ही रखते हैं । किसी समय वे संयम की रक्षा के लिए इनका परित्याग भी करते हैं ।

411. संग्रह-वृत्तिः लोभ-प्रवृत्ति

लोहस्सेस अणुप्फासो, मन्ने अन्नयरामवि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 887]
— ***दशवैकालिक 6/18***

संग्रह करना यह अंदर रहनेवाले लोभ की झलक है ।

412. असत्य, अविश्वसनीय

अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 887]
— ***दशवैकालिक 6/13***

असत्य, मनुष्यों के लिए अविश्वास का स्थान है । अत इसका त्याग करें ।

413. बोलो, असत्य नहीं

हिंसगं न मूसं बूया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 887]
— ***दशवैकालिक 6/12***

परपीड़ाजनक असत्य मत बोलो ।

414. असत्य निंदनीय

मुसावाओ उ लोगम्मि सव्व साहुहिं गरहिओ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 887]
– *दशवैकालिक 6/13*

संसार में सभी सत्पुरुषों द्वारा असत्य निंदनीय है ।

415. स्वामी अदत्त अग्राह्य

तं अप्पणा न गिण्हंति नो वि गिण्हावए परं ।
अन्नं वा गिण्हमाण पि नाणुजाणति संजया ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 887]
– *दशवैकालिक 6/14*

संयमी साधक बिना पूछे कोई भी वस्तु नहीं उठाता और न दूसरों को लेने के लिए प्रेरणा देता है और न ही लेनेवालों की अनुमोदना करता है ।

416. साधु गृहीवत्

जो सिया सन्निहि कामे, गिही पव्वइए न से ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 887]
– *दशवैकालिक 6/19*

जो साधु होकर सदा संग्रह की भावना रखता है, वह साधु नहीं किन्तु साधुवेष में गृहस्थ ही है ।

417. ज्ञानी, निर्ममत्व

अवि अप्पणो विदेहंमि नायरंति ममाइयं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 887]
– *दशवैकालिक 6/22*

और तो क्या, ज्ञानी पुरुष अपने शरीर के प्रति भी ममत्व नहीं रखते ।

418. ममत्त्व ही परिग्रह

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 887]
– *दशवैकालिक 6/21*

मूर्च्छा (ममत्वभाव) ही वस्तुतः परिग्रह है ।

419. सभी जीव सुख प्रिय

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 888]

– *दशवैकालिक 6/11*

समस्त प्राणी सुखपूर्वक जीना चाहते हैं। मरना कोई नहीं चाहता।

420. अहिंसा-दर्शन

अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 888]

– *दशवैकालिक 6/9*

सभी प्राणियों के प्रति स्वयं को संयत रखना-यही अहिंसा का पूर्ण दर्शन है।

421. प्राणीवध पाप

पाणिवहं घोरं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 888]

– *दशवैकालिक 6/11*

प्राणियों का वध (जीव हिंसा) घोर पाप है।

422. हिंसा त्याज्य

जावन्ति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाण वा, न हणे नो विघायए ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 888]

– *दशवैकालिक 6/10*

इस लोक में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं उन सबकी जान अनजान में हिंसा नहीं करना और न दूसरों से करवाना चाहिए।

423. हिंसा सर्वत्र त्याज्य

न हणे नो विघायए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 888]

— *दशवैकालिक 6/10*

ज्ञानीजन न तो स्वयं हिंसा करे और न ही दूसरों से करवाए।

424. वह वचनगुप्त नहीं

वयण विभत्ति अकुसलो, वओगयं बहुविहं अयाणंतो।
जइवि न भासइ किंची, न चेव वयगुत्तयं पत्तो॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 801]

— *दशवैकालिक नियुक्ति 290*

जो वचन-कला में अकुशल है और वचन की मर्यादाओं से अनभिज्ञ है वह कुछ भी न बोले, तब भी 'वचन गुप्त' नहीं हो सकता।

425. निर्ग्रन्थ-बल क्या ?

आगमबलिया समणा निग्गंथा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 808]

— *व्यवहारसूत्र 10/3*

श्रमण निर्ग्रन्थों का बल 'आगम' (शास्त्र) ही है।

426. व्यवहार, बलवान्

ववहारोऽपि हु बलवं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 914]

— *आव. नि. भाष्य 123*

संघ एवं समाज-व्यवस्था में व्यवहार ही सबसे बलवान् है।

427. संघ-व्यवस्था में व्यवहार बलवान्

ववहारो वि हु बलवं, जं छउमत्थं पि वंदइ अरहा।
जा होई आणाभिणो, आणंतो धम्मयं एयं॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 914]

— *आवश्यक नियुक्ति भाष्य 123*

संघ-व्यवस्था में व्यवहार महत्त्वपूर्ण है। केवली भी अपने छद्मस्थ गुरु को स्वकर्तव्य समझकर तबतक वंदना करते रहते हैं जबतक कि गुरु उसकी सर्वज्ञता से अनभिज्ञ रहते हैं।

428. धर्म का मूलः व्यवहार-शुद्धि

ववहार सुद्धि धम्मस्स, मूलं सव्वण्णूभासए ।
ववहारेण तु सुद्धेणं, अत्थसुद्धी तओ भवे ॥
सुद्धेणं चेव अत्थेणं, आहारो होइ सुद्धओ ।
आहारेणं तु सुद्धेणं, देह सुद्धी जओ भवे ॥
सुद्धेणं चेव देहेणं, धम्म जुग्गो अ जायइ ।
जं जं कुणइ किच्चं तु, तं तं ते सफलं भवे ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 935]

— *धर्मसंग्रह सटीक 2 अधि.*

सर्वज्ञभाषी तीर्थंकर परमात्मा ने धर्म का मूल व्यवहार-शुद्धि बताया है । चूंकि व्यवहार-शुद्धि से अर्थ-शुद्धि होती है । अर्थ-शुद्धि से आहार-शुद्धि होती है । आहार-शुद्धि से शरीर-शुद्धि होती है और शरीर-शुद्धि से व्यक्ति धर्मयुक्त होता है और धर्मयुक्त होने पर ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो-जो कार्य किए जाते हैं, वे सब सफल होते हैं ।

429. संकट में धैर्य

ण उच्चावयं मणं णियंछेज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 955]

— *आचारांग 2/3/1*

संकट में मन को ऊंचा-नीचा अर्थात् डांवाडोल नहीं होने देना चाहिए ।

430. गृहस्थ-परिचय निषेध

गिहि संथवं न कुज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ 955]

— *दशवैकालिक 8/2*

श्रमण को गृहस्थ से परिचय-सम्पर्क नहीं करना चाहिए ।

431. तुलसी सङ्गत साधु की

कुज्जा साहूहिं संथवं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग ६ पृ ७६७]

— *दशवैकालिक 8/2*

साधुपुरुषों-सज्जनों के साथ सम्पर्क करना चाहिए।

432. सूत्रार्थ गुरुगम्य

निउणो खलु सुत्तत्थो, ण हु
सक्को अपडिबोधित्तो णाउं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग ६ पृ ७७१]

— *नि. भाष्य 5252*

— *बृह. भाष्य 3133*

सूत्र का अर्थ अर्थात् शास्त्र का मूलभाव बहुत ही सूक्ष्म होता है वह आचार्य के द्वारा प्रतिबोधित हुए बिना नहीं जाना जाता।

433. सदोष-निर्दोष कब ?

निक्कारणम्मि दोसा, पडिबंधे कारणम्मि निद्दोसा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग ६ पृ ७७३]

— *निशीथ भाष्य 5244*

बिना विशिष्ट प्रयोजन के अपवाद दोष रूप है किंतु विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए वही निर्दोष है।

434. योग्य में योग्य का आधान

जो जस्स उ पाउग्गो, सो तस्स तहिं तु दायव्वो।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग ६ पृ ७७४]

— *निशीथ भाष्य 5291*

— *बृह. भाष्य 1170*

जो जिसके योग्य हो उसे वही देना चाहिए।

435. करुणाशील अहिंसक

इह संतिगया दविया णावकंखंति जीविउं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग ६ पृ १०६१]

— *आचारांग 1/1/7*

करुणाशील अध्यात्माणि जीवहिंसा करके जीना नहीं चाहती।

436. अहिंसक समर्थ

पहु एजस्स दुगुंछणाए।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1061]

— *आचारांग 1/1/7*

अहिंसक पुरुष वायुकायिक जीवों की हिंसा से निवृत्त होने में समर्थ हो जाता है।

437. स्वच्छन्दाचारी

आरंभसत्ता पकरेंति संगं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1062]

— *आचारांग 1/1/7*

स्वच्छन्दाचारी पुरुष आरंभ में आसक्त होकर नई नई आसक्तियों और नए नए बंधनों को पैदा करते हैं।

438. त्रिवाद

शुष्कवादो विवादश्च, धर्मवाद स्तथा परः।
इत्येष त्रिविधो वादः कीर्तितः परमर्षिभिः॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1081]

— *हारिभद्रीयाष्टक 12/1*

तत्त्वदर्शियों ने तीन प्रकार का वाद कहा है- शुष्कवाद, विवाद और धर्मवाद।

439. वाचना से निर्जरा

वायणाएणं निज्जरं जणयइ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1088]

— *उत्तराध्ययन 29/19*

वाचना (पठन-पाठन) से निर्जरा होती है।

440. गुप्त रहस्य कब प्रकट करें ?

खेत्त कालं पुरिसं, नउण पगासए गुत्तं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1093]

— *नि. भाष्य 6227*

— *बृह. भाष्य 790*

देश, काल और व्यक्ति को समझकर ही गुप्त रहस्य प्रकट करना चाहिए ।

441. ज्ञान-गरिमा

नाणम्मि असंतम्मि, चरित्तं पि न विज्जए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1094]

— *व्यवहार भाष्य 7 217*

ज्ञान नहीं है तो चारित्र भी नहीं है ।

442. दीक्षा निरर्थक

जइ नऽत्थि नाण चरणं, दिक्खा हु निरत्थिया तासिं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1094]

— *व्यवहारभाष्य 7 215*

यदि ज्ञान और तदनुसार आचरण नहीं है तो उसकी दीक्षा निरर्थक है ।

443. ज्ञान से चारित्र

नाणेण नज्जए चरणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1094]

— *व्यवहार चूलिका भाष्य 7-216*

ज्ञान से ही चारित्र (कर्तव्य) का बोध होता है ।

444. ज्ञान, प्रकाशक

सव्वजगुज्जोयकरं नाणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1094]

ज्ञान विश्व के समग्र तत्त्वों को प्रकाशित करनेवाला है ।

445. दुःख-मूल, क्रोध

मूलं कोहो दुहाण सव्वाणं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1144]

– धर्मरत्नप्रकरण । अधि. 3 गुण

सभी दुःखों का मूल क्रोध है ।

446. अनर्थ-मूल, मान

मूलं माणो अणत्थाणं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1144]

– धर्मरत्नप्रकरण । अधि. 3 गुण

सभी अनर्थों का मूल अभिमान है ।

447. सुख-मूल, क्षमा

खंती सुहाण मूलं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1144]

– संबोध सत्तरि 70

क्षमा सभी सुखों का मूल है ।

448. श्रेष्ठ क्या ?

जिण जणणी रमणीणं, मणीण चिंतामणी जहा पवरो ।
कप्पलया य लयाणं, तहा खमा सव्व धम्माणं ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1144]

– धर्मरत्नप्रकरण । अधि. 1 गुण

जैसे सभी स्त्रियों में जिनेश्वर परमात्मा की माता श्रेष्ठ है, सभी रत्नों में चिंतामणि रत्न श्रेष्ठ है और सभी लताओं में कल्पलता श्रेष्ठ है वैसे ही सभी धर्मों में क्षमा ही श्रेष्ठ है ।

449. गुण-मूल, विनय

विणओ गुणाण मूलं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1144]

— *धर्मरत्नप्रकरण 1 अधि. 3 गुण*

सभी गुणों का मूल विनय है।

450. तुख्मे तासीर सौहबते असर

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते ।
मुक्ताकारतया तदेव नलिनी पत्रस्थितम् राजते ॥
स्वात्यां सागरशुक्ति मध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते ।
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम् ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1144]

— *भर्तृहरिकृत नीतिशतक 67*

गरम लोहे पर जल की बूंद पड़ने से उसका नामोनिशान भी नहीं रहता, वही जल की बूंद कमल के पत्ते पर पड़ने से मोती-सी चमकने लगती है और वही जल की बूंद स्वाती नक्षत्र में समुद्र की सीप में पड़ने से मोती हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि संसार में अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संसर्ग से ही आते हैं।

(निःसंदेह अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संसर्ग या सोहबत से ही होते हैं। यदि संसर्ग अधम होता है तो मनुष्य अधम हो जाता है और यदि संसर्ग उत्तम होता है तो मनुष्य उत्तम हो जाता है।

451. संगति से गुण-दोष

प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम् ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1144]

— *भर्तृहरिकृत नीतिशतक 67*

निःसंदेह अधम, मध्यम और उत्तम गुण मनुष्यों में प्रायः संगति से ही आते हैं।

452. विद्या: वशीकरणमंत्र

विद्यया राजपूज्य:स्या-द्विद्यया कामिनी प्रिय: ।
विद्या हि सर्वलोकस्य, वशीकरणकार्मणम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1148]
— *स्थानांग सटीक 5 ठाणा 3 उ*

विद्वान विद्या से ही राजाओं द्वारा पूजित होता है। विद्या से कामिनी अङ्गनाओं को भी वश में कर लेता है। अतः विद्या ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वशीकरण मन्त्र तथा सम्मोहन मंत्र है।

453. वाणी-विनय

हियमिय अफरूसवाई, अणुवीई
भासिवाइओ विणओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1154]
— *दशवैकालिक निर्युक्ति 322*

हित, मित, मृदु और विचारपूर्वक बोलना वाणी का विनय है।

454. विनीत कौन ?

आणा निद्देस करे, गुरूणमुववायकारए ।
इंगियागारसंपन्ने, से विणीए त्ति वुच्चई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1155]
— *उत्तराध्ययन 1/2*

जो गुरुजनों की आज्ञाओं का यथोचित पालन करता है, उनके निकट सम्पर्क में रहता है एवं उनके हर संकेत व चेष्टा के प्रति सजग रहता है - उसे 'विनीत' कहा जाता है।

455. कैसा शिष्य बहिष्कृत ?

जहा सुणी पूइकण्णी णिक्कसिज्जइ सव्वसो ।
एवं दुस्सील पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1158]
— *उत्तराध्ययन 1/4*

जिसप्रकार सड़े हुए कानोंवाली कुतियाँ जहाँ भी जाती है, निकाल दी जाती है उसीप्रकार दु:शील, उद्दण्ड और मुखर-वाचाल मनुष्य भी सर्वत्र धक्के देकर निकाल दिया जाता है।

456. अविनीत कौन ?

आणाऽनिद्देस करे, गुरूणमणुववाय कारए ।
पडिणीए असंबुद्धे, अविणीएत्ति वुच्चइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1158]
— *उत्तराध्ययन 1/3*

जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन नहीं करता, जो गुरु की शुश्रूषा नहीं करता, जो गुरु के प्रतिकूल वर्तन करता है और जो तथ्य को नहीं जानता वह 'अविनीत' कहा जाता है।

457. वाचाल, बहिष्कृत

मुहरी निक्कसिज्जइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1155]
— *उत्तराध्ययन 1/4*

वाचाल शिष्य सड़े कानों वाली कुतियों की भाँति धत-धत करके बहिष्कृत कर दिया जाता है।

458. दु:शील, शूकरवत्

कण कुडगं जहित्ताणं, विट्ठं भुंजइ सूयरे ।
एवं सीलं जहित्ताण, दुस्सीले रमई मिए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1157]
— *उत्तराध्ययन 1/5*

जिसप्रकार चावलों का स्वादिष्ट भोजन छोड़कर शूकर विष्ठा खाता है, उसीप्रकार पशुवत जीवन बितानेवाला अज्ञानी, शील-सदाचार को छोड़कर दु:शील-दुराचार को पसन्द करता है।

459. आत्म-हित चाहक

विणए ठविज्ज अप्पाणं, इच्छन्तो हियमप्पणो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1159]
— *उत्तराध्ययन 1/6*

आत्मा का हित चाहनेवाला साधक स्वयं को विनय-सदाचार में स्थिर करे।

460. सार सार को गहीले

अट्ठ जुत्ताणि सिक्खिज्जा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1159]
— *उत्तराध्ययन 1/8*

अर्थयुक्त (सारभूत) बातें ही ग्रहण करना चाहिए।

461. थोथा देय उड़ाय

निरट्ठाणि उ वज्जए।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1159]
— *उत्तराध्ययन 1/8*

निरर्थक कार्यों बातों को छोड़ देना चाहिए।

462. विनयान्वेषण

तम्हा विणयमेसिज्जा,
सीलं पडिलभेज्जओ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1159]
— *उत्तराध्ययन 1/7*

विनय की खोज करना चाहिए जिससे कि शील-सदाचार की प्राप्ति हो।

463. अनुशासन प्रिय

अणुसासिओ न कुप्पिज्जा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1160]
— *उत्तराध्ययन 1/9*

गुरुजनों के अनुशासन से कुपित-क्षुब्ध नहीं होना चाहिए।

464. अज्ञानी-संसर्ग वर्ज्य

बालेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1160]
— *उत्तराध्ययन 1/9*

बाल अर्थात् अज्ञानी के साथ संपर्क, हँसी-मजाक, क्रीड़ा आदि नहीं करना चाहिए।

465. क्षमा-सेवन

खंति सेवेज्ज पंडिए।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1160]
— *उत्तराध्ययन 1/9*

क्षमाशील बनो।

466. कम बोलो

बहुयं माय आलवे।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1160]
— *उत्तराध्ययन 1/10*

बहुत नहीं बोलना चाहिए।

467. छिपाए नहीं !

आहच्च चंडालियं कट्टु,
न निण्हविज्ज कण्हुइ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1160]
— *उत्तराध्ययन 1/11*

यदि साधक कभी कोई चाण्डालिक-दुष्कर्म कर ले तो फिर उसे छिपाने की चेष्टा न करे।

468. है, वैसा कहो

कडं कडे त्ति भासिज्जा,
अकडं नो कडे त्ति य।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1160]
— *उत्तराध्ययन 1/11*

बिना किसी छिपाव या दुराव के किए हुए कर्म को किया हुआ कहिए तथा नहीं किए हुए कर्म को नहीं किया हुआ कहिए।

469. अड़ियल शिष्य

मा गलियस्सेव कसं,
वयण मिच्छे पुणो पुणो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1160]
– *उत्तराध्ययन 1/12*

बार-बार चाबुक की मार खानेवाले गलिताश्व अर्थात् अड़ियल या दुर्बल घोड़े की तरह कर्तव्य पालन के लिए पुनः पुनः गुरुओं के निर्देश की अपेक्षा मत रखो ।

470. सैन्धव शिष्य

कसं व दट्ठु माइन्नो,
पावगं परिवज्जए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1160]
– *उत्तराध्ययन 1/12*

जैसे उत्तम जाति का घोड़ा चाबुक को देखते ही उन्मार्ग को छोड़ देता है वैसे ही विनीत शिष्य गुरु के इंगिताकार को देखकर पापकर्म - अशुभ आचरण को छोड़ दे ।

471. नीचकर्म-त्याग

मा य चंडालियं कासी ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1160]
– *उत्तराध्ययन 1/10*

क्रोधावेश में आकर भी कोई चाण्डालिक कर्म अर्थात् नीचकर्म मत करो ।

472. पहले अध्ययन फिर ध्यान

कालेण य अहिज्जित्ता,
तओ झाइज्ज एगगो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1160]
– *उत्तराध्ययन 1/10*

यथासमय अध्ययन करके फिर उसके बाद तत्त्व का ध्यान - चिन्तन - मनन करना चाहिए ।

473. वचन-नीति

णाऽपुट्ठे वागरे किंचि ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1161]

— *उत्तराध्ययन 1/14*

बिना पूछे कुछ भी मत बोलो ।

474. क्रोध-विफल

कोहं असच्चं कुव्विज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1161]

— *उत्तराध्ययन 1/14*

क्रोध को विफल बना दो ।

475. समभाव

धारिज्जा पियमप्पियं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1161]

— *उत्तराध्ययन 1/14*

प्रिय-अप्रिय को समभाव से धारण करो ।

476. मिथ्या भाषण-त्याग

पुट्ठे वा नाऽलियं वए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1161]

— *उत्तराध्ययन 1/14*

पूछने पर झूट मत बोलो ।

477. स्वदमन श्रेष्ठ

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1162]

— *उत्तराध्ययन 1/16*

मुझे दूसरे वध और बंधन आदि से दमन करें, इससे तो अच्छा है कि मैं स्वयं ही संयम और तप के द्वारा अपनी इच्छाओं का दमन कर लूँ।

478. आत्म-नियन्त्रण

अप्पामेव दमेयव्वो ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1162]

– *उत्तराध्ययन 1/15*

अपने आप पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

479. आत्म-नियन्त्रण दुष्कर

अप्पा हु खलु दुद्दमो ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1162]

– *उत्तराध्ययन 1/15*

आत्मा बहुत दुर्दम है अर्थात् उसका नियन्त्रण रखना बड़ा ही कठिन है।

480. सुखी कौन ?

अप्पा दंतो सुही होइ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1162]

– *उत्तराध्ययन 1/15*

अपने आप पर नियन्त्रण रखनेवाला सुखी होता है।

481. मौन अनुचित कब ?

आयरिएहिं वाहिं तो,
तुसिणीओ ण कयाइ वि ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1163]

– *उत्तराध्ययन 1/20*

आचार्यों के द्वारा बुलाए जाने पर शिष्य किसी भी अवस्था में मौन न रहे।

482. अनुशासित शिष्य

आलवंते लवंते वा, ण णिसीज्जा कयाइ वि ।
चइत्ता आसणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1163]

— *उत्तराध्ययन 1/21*

बुद्धिमान शिष्य गुरु के द्वारा एकबार या बार-बार बुलाने पर कभी भी बैठा न रहे, किंतु आसन को छोड़कर यत्नपूर्वक उनके आदेश को स्वीकार करें ।

483. प्रश्न-पृच्छा कैसे ?

आसणगओ ण पुच्छिज्जा, णेव सिज्जागओ कया ।
आगम्मुक्कुडुओ संतो पुच्छिज्जा पंजली गडे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1163]

— *उत्तराध्ययन 1/22*

विनीत शिष्य आसन पर अथवा शय्या पर बैठा हुआ गुरु से प्रश्न न पूछे, किंतु उनके समीप जाकर उत्कटिकासन करता हुआ हाथ जोड़कर सूत्रादि अर्थ पूछे ।

484. शिष्य-विनयशीलता

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ ।
न जुंजे उरुणा उरुं, सयणे नो पडिस्सुणे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1163]

— *उत्तराध्यन 1/18*

आचार्यों के साथ सटकर न बैठें, आगे-पीछे न बैठें, पीठ करके न बैठें, उनके घुटने से घुटना सटाकर न बैठें, आगे भी न बैठें तथा शय्या पर बैठा हुआ ही उनकी वाणी को न सुनें ।

485. अज्ञ-प्राज्ञ शिष्य

हियं तं मन्नए पन्नो, वेस्सं भवइऽसाहुणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1164]

— *उत्तराध्ययन 1/28*

प्रज्ञावान् शिष्य गुरुजनों की जिन शिक्षाओं को हितकर मानता है, दुर्बुद्धि दुष्ट अज्ञ शिष्य को वे ही शिक्षाएँ बुरी लगती हैं ।

486. विनीत शिष्य

जं मे बुद्धाऽणु सासंति, सीएण फरुसेण वा ।
मम लाभुत्ति पेहाए, पवओरा (तं) पडिस्सुणे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1164]

— *उत्तराध्ययन 1/27*

विनीत शिष्य-शिष्या का यह चिन्तन होता है कि तत्त्वदर्शी गुरु का मधुर व कठोर अनुशासन मेरे लाभ के लिए ही है । इसलिए मुझे उनका खूब ध्यान रखना चाहिए । सावधानी के साथ उसे सुनना चाहिए ।

487. कठोर अनुशासन

फरुसमप्पणुसासण ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1164]

— *उत्तराध्ययन 1/29*

अनुशासन चाहे कठोर ही क्यों न हो, अनुशासित किया जाने पर क्रोध न करें ।

488. अनुशासित प्राज्ञ शिष्य

अणुसासणमोवायं,
दुक्कडऽस्स य परेणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1164]

— *उत्तराध्ययन 1/28*

दुष्कृत (पापकर्म) को दूर करनेवाला, गुरुजनों का उपाय युक्त अनुशासन प्राज्ञ शिष्य के लिए हित का कारण होता है ।

489. गुरु प्रसन्न

रमए पंडिए सासं, हयं भद्दं व वाहए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1165]

— उत्तराध्ययन 1/37

विनीत बुद्धिमान् शिष्य को शिक्षा देता हुआ ज्ञानी गुरु वैसे ही प्रसन्न होता है जैसे उत्तम अश्व (अच्छे घोड़े) पर सवारी करता हुआ घुड़सवार।

490. गुरु खिन्न

बालं सम्मइ सासंतो,
गलिअस्समिव वाहए।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1165]
— उत्तराध्ययन 1/37

अविनीत, बाल अर्थात् जड़ मूढ़ शिष्यों को शिक्षा देता हुआ गुरु उसीप्रकार खिन्न होता है जैसे अड़ियल या मरियल दुष्ट घोड़े पर चढ़ा हुआ घुड़सवार।

491. सुशिष्य-कुशिष्य परीक्षण

खड्डुयाहिं चेवडाहिं, अक्कोसेहिं वहेहि य।
कल्लाणमणुसासंतं, पावदिट्ठित्ति मन्नइ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1165]
— उत्तराध्ययन 1/38

गुरु मुझे ठोकरें (लात) मारते हैं, थप्पड़ लगाते हैं, मुझे कोसते हैं और पीटते हैं, इसप्रकार गुरुजनों के कल्याणकारी अनुशासन को पापदृष्टि शिष्य कष्टकारक मानता है। सुशिष्य की गुरु द्वारा कठोर परीक्षा लेने का यह एक तरीका है। इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर गुरु उस शिष्य को सुशिष्य मान लेते हैं।

492. विनीत-अविनीत-लक्षण

पुत्तो मे भाय नाइत्ति, साहू कल्लाण मन्नई।
पावदिट्ठी उ अप्पाणं, सासं दासं व मन्नई॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1165]
— उत्तराध्ययन 1/39

गुरु मुझे पुत्र, भाई और ज्ञातिजन की तरह आत्मीय समझ कर शिक्षा देते हैं, ऐसा विचार करके विनीत सुशिष्य उनके अनुशासन-शिक्षा को कल्याण कर मानता है, जबकि पापदृष्टि-अविनीत शिष्य उसी हितशिक्षा को नौकर को दी गई डाँट-डपट के समान खराब मानता है।

493. क्रोध त्याज्य

अप्पाणं पि ण कोवए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1166]

— *उत्तराध्ययन 1/40*

अपने आप पर भी कभी क्रोध मत करो।

494. छिद्रान्वेषी शिष्य

न सिया तोत्तगवेसए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1166]

— *उत्तराध्ययन 1/40*

(गुरु को खरी-खोटी सुनाने की ताक में) शिष्य उनका छिद्रान्वेषी न हो।

495. सुविनीत शिष्य

आयरियं कुवियं नच्चा, पतिएणं पसायए ।
विज्झ विज्जा पंजलिउडे, वएज्जा न पुणोत्तिय ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1166]

— *उत्तराध्ययन 1/41*

विनीत शिष्य आचार्य को कुपित हुए जानकर प्रीतिकारक, वचनों से उन्हें प्रसन्न करे, हाथ जोड़कर उन्हें शान्त करे और अपने मुँह से ऐसा कहे कि "पुनः मैं ऐसा नहीं करूँगा।"

496. धर्मसंगत व्यवहार

धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धे हाऽऽयरियं सया ।
तमायरंतो ववहारं, गरहं नाभिगच्छइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1166]

— ***उत्तराध्ययन 1/42***

जो व्यवहार धर्मसंगत है, तत्त्वज्ञ आचार्यों ने जिसका सदा आचरण किया है, उस व्यवहार (सदाचार) का सदैव आचरण करनेवाला मनुष्य कहीं पर भी निंदा का पात्र नहीं बनता ।

497. गुर्वाज्ञा

मणोगयं वक्कगयं, जणित्ताऽयरियस्सउ ।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1166]

— ***उत्तराध्ययन 1/43***

आचार्य के मनोगत और वाक्यगत भावों को समझ कर शिष्य उन्हें वचन द्वारा स्वीकार करके फिर उसे कार्यरूप में परिणत करें ।

498. ज्ञान से विनम्र

णच्चा णमइ मेहावी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1167]

— ***उत्तराध्ययन 1/45***

बुद्धिमान् ज्ञान प्राप्त करके नम्र हो जाता है ।

499. विनय-ज्ञान युक्त शिष्य

वित्ते अचोइए निच्चं, खिप्पं हवइ सुचोयए ।
जहोपइट्ठं सुकडं, किच्चाइं कुव्वई सया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1167]

— ***उत्तराध्ययन 1/44***

विनय-सम्पन्न शिष्य गुरु द्वारा बिना प्रेरणा दिए ही कार्य करने में प्रवृत्त होता है वह गुरु द्वारा अच्छी तरह प्रेरित किए जाने पर शीघ्र ही उनके उपदेशानुसार सभी कार्य भली-भाँति सम्पन्न कर लेता है ।

500. गुरु-आशातना, विनाश का कारण

थंभा व कोहा व मयप्पमाया,
गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे ।
सो चेव ऊ तस्स अभूइ भावो,
फलं व कीअस्स वहाय होइ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1168]
— *दशवैकालिक 9/1*

जो मुनि अभिमान, क्रोध, माया या प्रमादवश गुरु के निकट रहकर विनय नहीं सीखता, उनके प्रति विनय का व्यवहार नहीं करता, उसका यह अविनय भाव बांस के फल की तरह स्वयं के लिए विनाश का कारण बनता है ।

501. मुक्ति, असंभव

सिओ हु से पावय नो डहिज्जा,
आसी विसो वा कुविओ न भक्खे ।
सिआ विसं हालहलं न मारे,
न आवि मुक्खो गुरु हीलणाए ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1168-1169]
— *दशवैकालिक 9/1/7*

संभव है कदाचित् अग्नि न जलावे, संभव है कुपित विषधर न डसे और यह भी संभव है कि हलाहल विष भी मृत्यु का कारण नही बने, किन्तु गुरु की अवहेलना करनेवाले साधक के लिए मोक्ष कदापि संभव नहीं है ।

502. गुरु-आशातना

जे यावि मंदत्ति गुरुं वइत्ता
डहरे इमे अप्पसुय त्ति नच्चा ।
हीले त्ति मिच्छं पडिवज्जमाणा,
करेंति आसायणं ते गुरुणं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1168]

— *दशवैकालिक 9/1/2*

जो अविनीत गुरु को मन्दबुद्धि, अल्पवयस्क एवं अल्प श्रुत जानकर उनकी अवहेलना करते हैं, वे मिथ्यात्व को प्राप्त कर गुरु की आशातना करते हैं।

503. गुरु-आशातना अहितकर

जो पावगं जालियमवक्कमेज्जा,
आसीविसं वा वि हु कोवएज्जा ।
जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी,
एसोवमासायणया गुरूणं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1168]

— *दशवैकालिक 9/1/6*

जैसे कोई जलती अग्नि को लांघता है, आशीविष सर्प को कुपित करता है और जीवित रहने की इच्छा से विष खाता है वैसे ही गुरु की आशातना भी इनके समान हैं-ये जिसप्रकार हित के लिए नहीं होते, उसीप्रकार गुरु की आशातना भी हित के लिए नहीं होती ।

504. गुरु-आशातना से दुष्परिणाम

जो पव्वयं सिरसा भेत्तुमिच्छे,
सुत्तं व सीहं पडिबोहएज्जा ।
जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं,
एसोवमासायणया गुरूणं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1169]

— *दशवैकालिक 9/1/8*

जैसे कोई व्यक्ति गन्धमादन पर्वत को सिर से फोड़ना चाहता है अथवा सोए हुए सिंह को जगाता है या जो भाले की नोक पर प्रहार करना चाहता है, वैसे ही गुरु की आशातना करनेवाला भी इनके तुल्य ही है ।

505. अवहेलना से अमुक्ति

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे,
सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे ।
सिया न भिंदेज्ज व सत्तिअग्गं,
न यावि मोक्खो गुरु हीलणाए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1169]
— ***दशवैकालिक 9/1/9***

संभव है शिर से पर्वत को भी छेद डाले, सिंह कुपित होने पर भी न खावे और भाले की नोक भी भेदन न करे, पर गुरु की अवहेलना से मोक्ष कदापि सम्भव नहीं है ।

506. गुरुकृपा तत्पर

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना,
अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो ।
तम्हा अहाबाहसुहाभिकंखी,
गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1169]
— ***दशवैकालिक 9/1/10***

आचार्य प्रवर के अप्रसन्न होने पर बोधि-लाभ नहीं होता । गुरु की आशातना से मोक्ष नहीं मिलता । इसलिए मोक्ष-सुख चाहनेवाला मुनि गुरु-कृपा (गुरु-प्रसन्नता) के लिए तत्पर रहे ।

507. आशातना से अमुक्ति

आसायणं नत्थि मोक्खो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1169]
— ***दशवैकालिक 9/1/5***

आज्ञा-भंग में मोक्ष नहीं है अर्थात् आशातना करने से मोक्ष नहीं मिलता ।

508. शिष्य-विनय

एवाऽऽयरियं उवचिट्ठएज्जा,
अणंत नाणो विगओ वसंतो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1169]

— *दशवैकालिक 9/1/11*

शिष्य भले ही अनन्त ज्ञान सम्पन्न क्यों न हो, फिर भी आचार्य (गुरु भ.) के पास विनयपूर्वक ही बैठे ।

509. विनम्रता किसके प्रति ?

जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे,
तस्संतिए वेणइयं पउंजे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1169]

— *दशवैकालिक 9/1/12*

जिनके पास धर्मपद-धर्म की शिक्षा लें, उनके प्रति सदा विनम्र भाव रखना चाहिए ।

510. गुरु-अवहेलना

न आवि मुक्खो गुरु हीलणाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1169]

— *दशवैकालिक 9/1/7*

गुरुजनों की अवहेलना करनेवाला कभी बंधन मुक्त नहीं हो सकता ।

511. मूल और फल

एवं धम्मस्स विणओ,
मूलं परमो से मुक्खो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1170]

— *दशवैकालिक 9/2/2*

धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम फल है ।

512. विनय से इष्ट-प्राप्ति

जेण कीत्ति सुयं सिग्घं,
निस्सेसं चाभिगच्छइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1170]
— ***दशवैकालिक 9/2/2***

विनय से यश, कीर्ति बढ़ती है और प्रशस्त श्रुतज्ञान के लाभ आदि से समस्त इष्ट तत्त्वों की प्राप्ति होती है ।

513. अविनीत, दुःखी

दीसती दुहमेहंता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1171]
— ***दशवैकालिक 9/2/10***

अविनीत आत्माएँ दुःख का अनुभव करती हुई नजर आ रही हैं ।

514. संसार-स्रोत में दुःखी कौन ?

जे अ चंडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे ।
बुज्झइ से अविणीअप्पणा, कट्ठं सोअयं जहा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1171]
— ***दशवैकालिक 9/2/3***

जो मनुष्य क्रोधी, अविवेकी, अभिमानी, दुर्वादी, कपटी और धूर्त है, वह अविनीतात्मा संसार के प्रवाह में वैसे ही प्रवाहित होता रहता है जैसे जल के प्रवाह में पड़ा हुआ काष्ठ ।

515. मूर्खोपदेश कोप-हेतु

विणयं पि जो उवाएणं, चोइओ कुप्पई नरो ।
दिव्वं सो सिरिमिज्जंति, दंडेण पडिसेहए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1171]
— ***दशवैकालिक 9/2/4***

कोई महापुरुष सुंदर शिक्षा द्वारा जब किसी मनुष्य को विनय-मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं तब वह कुपित हो जाता है । ऐसी स्थिति में वह स्वयं अपने द्वार पर आई हुई दिव्य लक्ष्मी को डंडा मारकर भगा देता है ।

516. सुविनीत सुखी

दीसंति सुहमेहंता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1171]

— ***दशवैकालिक 9/2/11***

सुविर्नीत आत्माएँ सुख का अनुभव करती हुई देखी जाती है ।

517. गुरु-सेवा-फल

जे आयरिअ उवज्झायाणं, सुस्सूसा वयणंकरा ।
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति, जलसित्ता इव पायवा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1172]

— ***दशवैकालिक 9/2/12***

जो अपने आचार्य एवं उपाध्यायों की शुश्रूषा-सेवा तथा उनकी आज्ञाओं का पालन करता है, उनकी शिक्षाएँ-विद्याएँ वैसे ही बढ़ती हैं । जैसे जल से सींचे हुए वृक्ष बढ़ते हैं ।

518. बाँटो, मुक्ति

असंविभागी न हु तस्स मुक्खो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/2/23***

जो संविभागी नहीं है अर्थात् प्राप्त सामग्री को साथियों में बाँटता नहीं है, उसकी मुक्ति नहीं होती ।

519. दुर्वचन-लोहकंटक

मुहुत्त दुक्खाउ हवंति कंटया,
अओ मया तेऽवि तओ सुउद्धरा ।
वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि,
वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/3/7***

लोहे के काँटे अल्पकाल तक दुःखदायी होते हैं और वे भी शरीर से सहजतया निकाले जा सकते हैं, किन्तु दुर्वचन रूपी काँटे जन्म-जन्मान्तर के वैर की परम्परा बढ़ानेवाले और महाभयकारी होते हैं।

520. पूज्य कौन ?

अलद्धुअं नो परिदेवइज्जा,

लद्धुं न वीकत्थइ (वा) स पुज्जो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/3/4***

जो लाभ न होने पर खिन्न नहीं होता है और लाभ होने पर अपनी बड़ाई नहीं हाँकता है, वही पूज्य है।

521. विनय-वर्तन

रायणाहिएसुं विणयं पउंजे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 8/41 एवं 9/3/3***

बड़ों (रत्नाधिक) के साथ विनयपूर्वक व्यवहार करो।

522. वही पूज्य

जो छंदमाराहयई स पुज्जो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/3/1***

जो गुरुजनों की भावनाओं का आदर करता है, वही शिष्य पूज्य होता है।

523. गुरु-शुश्रूषा में जागरूक

आयरिअं अग्गिमिवा हि अग्गी,

सूस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/3/1***

जैसे अग्निहोत्री अग्नि की शुश्रूषा करता हुआ जागृत रहता है ठीक वैसे ही आचार्य (गुरु) की शुश्रूषा करते हुए शिष्य को जागरुक रहना चाहिए।

524. वचन सहिष्णु

अणासए जो उ सहिज्ज कंटए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/3/6***

जो कानों में प्रवेश करते हुए वचन रूपी काँटों को सहन करता है, वही पूज्य है।

525. पूजनीय कौन ?

गुरुं तु नासाययई स पुज्जो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/3/2***

जो गुरु की आशातना नहीं करता, वही पूज्य है।

526. वही पूज्य

संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/3/5***

जो संतोष के पथ में रमता है, वही पूज्य है।

527. शिक्षा-प्राप्ति किसे ?

जस्सेयं दुहओ नायं,
सिक्खं से अभिगच्छई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]

— ***दशवैकालिक 9/2/22***

जिसे ये दो बातें-विनीत को सम्पत्ति और अविनीत को विपत्ति ज्ञात है, वही कल्याणकारिणी शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

528. **संपत्ति-विपत्तिभागी**

विवत्ती अविणीअस्स,
संपत्ती विणिअस्स य ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1173]
— ***दशवैकालिक 9/2/22***

अविनीत विपत्ति का भागी होता है और विनीत संपत्ति का ।

529. **साधु-असाधु किससे ?**

गुणेहि साहू अगुणे हि ऽ साहू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1174]
— ***दशवैकालिक 9/3/11***

सद्गुणों से साधु कहलाता है और दुर्गुणों से असाधु ।

530. **आत्मज्ञानी**

विआणिआ अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहि समो स पुज्जो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1174]
— ***दशवैकालिक 9/3/11***

जो अपने को अपने द्वारा जानकर राग-द्वेष के प्रसंगों में सम रहता है, वही साधक पूज्य है ।

531. **निष्कषायी पूज्य**

चउक्कसायावगए स पुज्जो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1174]
— ***दशवैकालिक 9/3/14***

जो चार कषाय से रहित हैं, वही पूज्य है ।

532. **वही पूज्य**

थंभं च कोहं च चए, स पुज्जो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1174]

— *दशवैकालिक 9/3/12*

जो अहंकार और क्रोध का त्याग करता है, वही पूज्य होता है ।

533. ग्राह्य-हेय क्या ?

गिण्हाहिं साधुगुण मुंच असाहू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1174]

— *दशवैकालिक 9/3/11*

सद्गुणों को ग्रहण करो और दुर्गुणों को छोड़ो ।

534. भाषा-विवेकी पूज्य

ओहारणिं अप्पिअकारिणिं च,
भासं न भासिज्ज सया स पुज्जो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1174]

— *दशवैकालिक 9/3/9*

जो निश्चयात्मक और अप्रियकारिणी भाषा का प्रयोग नहीं करता, वही पूज्य है ।

535. जितेन्द्रिय पूज्य

जिइंदिए जो सहइ, स पुज्जो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1174]

— *दशवैकालिक 9/3/8*

जितेन्द्रिय होता हुआ जो कटु वचनों को सहता है, वही पूज्य है ।

536. मधुर वचन है माखन मिश्री

हितं मितं चापरुषं, ब्रुवतोऽनुविचिन्त्य च ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1175]

— *द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका 29/5*

सोच-विचार कर हित, मित और मृदु बोलना चाहिए ।

537. जिनवचन का मूल

विनयेन विना न स्या-ज्जिन प्रवचनोन्नतिः ।
पयः सेकं विना किं वा, वर्धते भूवि पादपः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1176]

– *द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका 29/17*

विनय के बिना जिनप्रवचन का उत्कर्ष नहीं होता। क्या बिना जल से सींचे वृक्ष वृद्धि पा सकते हैं ? कदापि नहीं।

538. मनो-विचिकित्सा

कहं कहं वा वितिगिच्छतिन्ने ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1177]

– *सूत्रकृतांग 1/14/6*

मुमुक्षु को किसी न किसी तरह मन की विचिकित्सा से पार हो जाना चाहिए।

539. त्रुटि-स्वीकार, भव-पार

डहरेण वुड्ढेणणुसासिए उ,
राइणिए णावि समव्वएण।
सम्मं तयं थिरतो णाभिगच्छे,
णिज्जंतए वावि अपारए से ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1177]

– *सूत्रकृतांग 1/14/7*

गुरु सान्निध्य में निवास करते हुए किसी साधु से किसी विषय में प्रमादवश भूल हो जाए तो अवस्था और दीक्षा में छोटे या बड़े साधु द्वारा अनुशासित-शिक्षित किए जाने पर या भूल सुधारने के लिए प्रेरित किए जाने पर यदि वह उसे सम्यक्तया स्वीकार नहीं करता है, तो वह संसार समुद्र को पार नहीं कर सकता।

540. निद्रा-प्रमाद-त्याग

निद्दंच भिक्खू न पमाय कुज्जा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1177]

– *सूत्रकृतांग 1/14/6*

श्रमण, निद्रा और प्रमादादि नहीं करे।

541. बोलो ! कर्कश नहीं

ण यावि किंचि फरुसं वदेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1178]

— ***सूत्रकृतांग 1/14/9***

तनिक भी कठोर भाषा मत बोलो ।

542. असत् आचरण-वर्जन

सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1178]

— ***सूत्रकृतांग 1/14/9***

यह मेरे लिए निश्चय ही कल्याणकारी है, ऐसा समझकर प्रमाद अर्थात असत् आचरण नहीं करे ।

543. निर्देशक गुरु

सूरोदये पासति चक्खुणेव ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1178]

— ***सूत्रकृतांग 1/14/13***

सूर्योदय होने पर (प्रकाश होने पर) भी आँख के बिना नहीं देखा जाता है, वैसे ही स्वयं में कोई कितना ही चतुर क्यों न हो, किन्तु वह निर्देशक गुरु के अभाव में तत्त्वदर्शन नहीं कर पाता ।

544. यथार्थोपदेष्टा

णो छायए णो ऽवि य लूसएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1179]

— ***सूत्रकृतांग 1/14/19***

उपदेशक सत्य को कभी छिपाए नहीं, और न ही उसे तोड़-मरोड़ कर उपस्थित करे ।

545. परिहास-वर्जन

ण या ऽ वि पन्ने परिहास कुज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1179]

— *सूत्रकृतांग 1/14/19*

प्रज्ञावान् पुरुष किसी की भी हंसी-मजाक नहीं करें।

546. बोलो, निश्चयात्मक नहीं !

ण या ऽऽ सिया वाय वियागरेज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1179]

— *सूत्रकृतांग 1/14/19*

साधक स्याद्वाद से रहित (निश्चयकारी) वचन न बोले।

547. अहंकार-प्रदर्शन हेय

माणं ण सेवेज्ज पगासणं च ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1179]

— *सूत्रकृतांग 1/14/19*

साधक गर्व न करे और न ही स्वयं को बहुश्रुत एवं महानतपस्वी के रूप में प्रकाशित करे।

548. मित-मधुर

निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1180]

— *सूत्रकृतांग 1/14/23*

थोड़े से में कही जानेवाली बात को व्यर्थ ही लम्बी न करें।

549. अनेकान्त युक्तवचन

विभज्यवायं च वियागरेज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1180]

— *सूत्रकृतांग 1/14/22*

विचारशील पुरुष सदा विभज्यवाद अर्थात् स्याद्वाद युक्त वचन का प्रयोग करे।

550. निरपेक्ष साधक

णो तुच्छए णो य विकथइज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1180]

— *सूत्रकृतांग 1/24/21*

ज्ञानी साधक न किसी को तुच्छ-हल्का बताए और न स्व-पर झूठी प्रशंसा करे ।

551. कठोर सत्य मत बोलो !

ओए तहीयं फरुसं वियाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1180]

— *सूत्रकृतांग 1/14/21*

सत्य वचन भी यदि कठोर हो, तो मत बोलो ।

552. समयोचित भाषा

वियागरेज्जा समयासुपन्ने ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1180]

— *सूत्रकृतांग 1/14/22*

सुप्रज्ञ समयानुसार बोले ।

553. अकषायी भिक्षु

अकसाइ भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1180]

— *सूत्रकृतांग 1/14/21*

श्रमण कषाय-भाव से रहित बनें ।

554. पीड़ोत्पादक भाषा त्याज्य

ण कत्थइ भास विहिंसइज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1180]

— *सूत्रकृतांग 1/14/23*

ऐसी भाषा मत बोलो जिससे किसी को पीड़ा पहुँचे ।

555. शुद्ध-वचन

आणाइसुद्धं वयणं भिउंजे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1180]

— ***सूत्रकृतांग 1/14/24***

जिनाज्ञानुसार शुद्ध वचन बोलो ।

556. निर्दोष वचन

अभिसंधए पावविवेग भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1180]

— ***सूत्रकृतांग 1/14/24***

भिक्षु पाप का विवेक रखता हुआ निर्दोष वचन बोले ।

557. प्रस्तुति-शास्त्रानुरूप

अलुसए णो पच्छन्नभासी,
णो सुत्तमत्थं च करेज्जताई ।
सत्थार भत्ती अणुवीइवायं,
सुयं च सम्मं पडिवाययंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1181]

— ***सूत्रकृतांग 1/14/26***

साधु आगम के अर्थ को दूषित न करें तथा वह सिद्धान्त को छिपाकर न बोले । आत्मत्राता-स्व परत्राता साधु सूत्रार्थ को अन्यथा (उलट-पुलट) न करें । शिक्षादाता - प्रशास्ता गुरु की सेवा-भक्ति का ध्यान रखते हुए सम्यक्तया सोच विचार कर कोई बात कहें, गुरु से जैसा सुना है, वैसा ही दूसरे के समक्ष सिद्धान्त या शास्त्रवचन का प्रतिपादन करें ।

558. बोलो, मित

नातिवेलं वदेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1181]

— ***सूत्रकृतांग 1/14/25***

आवश्यकता से अधिक मत बोलो ।

559. सम्यग्दृष्टि

से दिट्ठिमं दिट्ठि ण लूसएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1181]

— *सूत्रकृतांग 1/14/25*

सम्यग्दृष्टि साधक को सत्यदृष्टि का अपलाप नहीं करना चाहिए।

560. विनय-सौरभ

विणएण णरो गंधेण चंदणं सोमयाइ रयणियरो ।
महुर रसेण अमयं जणपियत्तं लहइ भुवणे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1181]

— *धर्मरत्नप्रकरण 1 अधि.*

जैसे सुगन्ध के कारण चन्दन, सौम्यता के कारण चन्द्रमा और मधुरता के कारण अमृत जगत्प्रिय है वैसे ही विनय के कारण मनुष्य भी समस्त जगत में सबका प्रिय हो जाता है।

561. अनुशासित श्रमण

एत्थारभत्ती अणुवीइवायं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1181]

— *सूत्रकृतांग 1/14/26*

श्रमण प्रशास्ता गुरु की भक्ति का ध्यान रखता हुआ सोच-विचारकर कोई बात कहें।

562. विनीत सर्वजनप्रिय

सुविसुद्धसीलजुत्तो, पावइ कीर्त्ति जसं च इहलोए ।
सव्वजणवल्लहो वि य, सुहगइभागी य परलोए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1181]

— *धर्मरत्नप्रकरण 1 अधि. 4 गुण*

विशुद्धशील-सदाचार सम्पन्न विनीत व्यक्ति इस लोक में यश-कीर्ति, मान-सम्मान व प्रतिष्ठा पाता है तथा समाज में सर्ववल्लभ बन जाता है और परलोक में सद्गति का भागी बनता है।

563. देव तुल्य कौन ?

द्वे एव देवते वत मातापिता च जीवलोकेऽस्मिन् ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1182]

— *आवश्यक कथा 1 अ. 1*

इस संसार में माता और पिता ये दोनों ही देवतुल्य हैं।

564. साधु-सेवा के फल

उपदेशः शुभो नित्यं, दर्शनं धर्मचारिणाम् ।
स्थाने विनय इत्येतत्, साधु सेवा फलं महत् ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1191]

— *धर्मबिन्दु 1 अधि.*

शुभ उपदेश का मिलना, धार्मिक पुरुषों के नित्यदर्शन और उचित स्थान पर विनय करना-ये साधु सेवा के महान् फल हैं।

565. न देय, न आदेय

न ग्राह्याणि न देयानि, पञ्च द्रव्याणि पंडितैः ।
अग्निर्विषं तथा शस्त्रं, मद्यमांसं च पञ्चमम् ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1208]

— *धर्मसंग्रह 2/83*

पण्डितों के द्वारा आग, जहर, शस्त्र, मदिरा और मांस-ये पाँच वस्तुएँ न किसी को दी जानी चाहिए और न ली जानी चाहिए।

566. पापभीरु श्रावक

महुमज्जमंस भेसज्जमूल सत्थग्गिजंतमंताइं ।
न कयावि हु दायव्वं, सड्ढेहिं पावभीरूहिं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 6 पृ. 1208]

— *धर्मरत्नप्रकरण सटीक 1/6/14*

पापभीरु श्रावकों के द्वारा निम्नांकित वस्तुएँ कदापि नहीं दी जानी चाहिए। मधु, मदिरा, मांस, औषधि-मूल, शस्त्र, अग्नि और जन्त्र-मन्त्रादि।

567. लक्ष्यानुरूप गति

अणुसोयपट्ठिए बहुजणम्मि पडिसोयलद्धलक्खेणं ।
पडिसोयमेव अप्पा, दायव्वो होउकामेणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1247]

— ***दशवैकालिक चूलिका*** 2/2

बहुत से लोग अनुस्रोत-विषय प्रवाह के वेग से संसारसमुद्र की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, किन्तु जो मुक्त होना चाहता है जिसे प्रतिस्रोत अर्थात् विषय भोगों के प्रवाह से विपरीत होकर संयम के प्रवाह में गति का लक्ष्य प्राप्त है; उसे अपनी आत्मा को प्रतिस्रोत की ओर (सांसारिक विषयभोगों के जल प्रवाह से प्रतिकूल) ले जाना चाहिए।

568. अनुस्त्रोत-प्रतिस्त्रोत

अणुसोय सुहोलोगो, पडिसोओ आसवो सुविहियाणे ।
अणुसोओ संसारो, पडिसोओ तस्स उत्तारो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1247]

— ***दशवैकालिक चूलिका*** 2/3

अनुस्रोत (विषयविकारों के अनुकूल प्रवाह) संसार है और प्रतिस्रोत उससे बाहर निकलने का उपाय द्वार है। सामान्य संसारी मनुष्य अनुस्रोत अर्थात् विषयविकारों के अनुकूल प्रवाह में बहनेवाले और उन्हींमें सुखानुभूति करनेवाले होते हैं जबकि सन्तपुरुषों का लक्ष्य प्रतिस्रोत अर्थात् जन्म-मरण से पार जाने का होता है।

569. सत्सहवास

असंकिलिट्ठेहिं समं वसेज्जा,
मुणी चरितस्स जओ न हाणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1248]

— ***दशवैकालिक चूलिका*** 2/2

मुनि संक्लेशरहित साधुओं के साथ रहे, जिससे चारित्रादि गुणों की हानि न हो।

570. मुनि-मर्यादा

गिहिणो वेयावडियं न कुज्जा,
अभिवायणं वंदणं पूयणं वा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1248]
— ***दशवैकालिक चूलिका 2/9***

मुनि गृहस्थ का वैयावृत्य (सेवा) न करे और न ही उनका अभिवादन, वंदन और पूजन ही करे।

571. अन्तर्निरीक्षण

किं मे परो पासइ किं च अप्पा ?
किं वाहं खलियं न विवज्जयामि ?
इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो,
अणागयं नो पडिबंध कुज्जा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1248]
— ***दशवैकालिक चूलिका 2/13***

क्या मेरी स्खलना (त्रुटि) को दूसरा कोई देखता है ? अथवा क्या अपनी भूल को मैं स्वयं देखता हूँ ? अथवा कौन-सी स्खलना मैं त्याग नहीं कर रहा हूँ ? इसप्रकार आत्मा का सम्यक् अन्तर्निरीक्षण करता हुआ मुनि अनागत में प्रतिबंध न करे अर्थात् वह अपने दोषों-भूलों को तत्काल सुधारने में लग जाए, भविष्य पर न टाले कि मैं इस भूल को कल, परसों या बाद में सुधार लूँगा।

572. शीघ्र संभल !

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं,
काएण वाया अदुमाणसेणं ।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा,
आइन्नओ खिप्पमिवक्खलीणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1248]
— ***दशवैकालिक चूलिका 2/14***

धीर साधक जब कभी अपने आपको मन-वचन और काया से कहीं भी दुष्प्रवृत्त होता देखे तो वह शीघ्र संभल जाए। जैसे उत्तम जाति का अश्व लगाम खींचते ही शीघ्र संभल जाता है।

573. प्रतिबुद्ध संयमित

जस्सेरिया जोग जिइंदियस्स,
धिइमओ सप्पुरिसस्स निच्चं ।
तमाहु लोए पडिबुद्धजीवी,
सो जीवइ संजम जीविएणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1248]
— ***दशवैकालिक चूलिका 2/15***

जिस धृतिमान् जितेन्द्रिय सत्पुरुष के मन-वचन-काया के योग नित्य वश में रहते हैं, उसे ही लोक में सदा जाग्रत कहा जाता है। वह सत्पुरुष हमेशा संयमी जीवन जीता है।

574. आत्म-विचारणा

जो पुव्वरत्तावररत्तकाले,
संपहए अप्पगमप्पगेणं ।
किं मे कडं, किं च मे किच्चसेसं ?
किं सक्कणिज्जं न समायरामि ? ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1248]
— ***दशवैकालिक चूलिका 2/12***

जो साधक रात्रि के प्रथम प्रहर और पिछले प्रहर में अपनी आत्मा का अपनी आत्मा द्वारा सम्यक अन्तर्निरीक्षण करता है कि-मैंने क्या (कौन-सा करने योग्य कृत्य) किया है ? मेरे लिए क्या (कौन-सा) कृत्य शेष रहा है ? वह कौन-सा कार्य है, जो मेरे द्वारा शक्य है, किन्तु मैं प्रमादवश नहीं कर रहा हूँ ?

575. महापाप क्या ?

ब्रह्महत्या सुरापानं, स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहु, रेभिश्च सहसङ्गमम् ॥
(संसर्गश्चापि तैः सह)

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1249]

— *मनुस्मृति 11/54*

ब्रह्म हत्या, मदिरापान, सुवर्ण आदि की चोरी, गुरु-स्त्रीगमन, और पाप करनेवालों के साथ संसर्ग-ये बड़े भारी पातक हैं ।

576. काम-भोग, अग्निघृतवत्

न जातु कामः कामाना-मुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1256]

— *मनुस्मृति 2/94*

एवं महाभारत आदिपर्व 65

कामनाओं के उपभोग से काम-विकार की कभी शांति नहीं होती, प्रत्युत घृत डालने पर अग्नि की तरह वह और ज्यादा बढ़ती है !

577. विष और विषय में महदन्तर

विषस्य विषयाणां च, दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
उपभुक्तं विषं हन्ति, विषयाः स्मरणादपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1256]

— *उपदेशप्रासाद*

विष और विषयों में बहुत बड़ा अन्तर है, विष तो खाने से मारता है किंतु विषय तो स्मरणमात्र से नष्ट कर देता है ।

578. काम-भोग से अतृप्त

तण कट्ठेण व अग्गी, लवणजलो वा नई सहस्सेहिं ।
न इमो जीवो सक्को, तिप्पेउं काम भोगेहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1257]

— *आतुर प्रत्याख्यान 50*

एवं महाप्रत्याख्यान 55

जिसप्रकार तृण और काष्ठ से अग्नि तथा हजारों नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है, उसीप्रकार रागासक्त आत्मा काम-भोगों से तृप्त नहीं हो पाती है ।

579. भोजन से अतृप्त

तणकट्ठेण व अग्गी, लवणजलो वा नईसहस्सेहिं ।
न इमो जीवो सक्को, तिप्पेउं भोयणविहीए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1257]
— ***आतुरप्रत्याख्यान 57***

जिसप्रकार तृण और काष्ठ से अग्नि तथा हजारों नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है, उसीप्रकार रागासक्त आत्मा भोजन विधि से तृप्त नहीं हो पाती है ।

580. वीतरागता-फल

वीयरागयाएणं णेहाणु बंधणाणि
तण्हाणुबंधणाणि य वोच्छिदइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1336]
— ***उत्तराध्ययन 29/45***

वीतरागता से स्त्री-पुत्र, सगे-सम्बन्धी आदि का स्नेह और धन-धान्य आदि की तृष्णा नष्ट हो जाती है ।

581. धर्म, दीपक

दीवे व धम्मं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1391]
— ***सूत्रकृतांग 1/6/4***

धर्म दीपक के समान है ।

582. ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम तप

तवेसु व उत्तम बंभचेरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1394]
— ***सूत्रकृतांग 1/6/23***

तपों में सर्वोत्तम तप-ब्रह्मचर्य है ।

583. निष्पाप सत्य

सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1394]

— ***सूत्रकृतांग 1/6/23***

सत्य वचनों में भी अनवद्य सत्य अर्थात् हिंसा रहित सत्यवचन श्रेष्ठ है ।

584. निर्वाण श्रेष्ठ

निव्वाण सेट्ठा जह सव्वधम्मा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1394]

— ***सूत्रकृतांग 1/6/24***

सभी धर्मों में निर्वाण को श्रेष्ठ कहा गया है ।

585. आस्रव-संवर क्या ?

पमाय कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहाऽवरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1404]

— ***सूत्रकृतांग 1/8/3***

प्रमाद को कर्म-आस्रव और अप्रमाद को अकर्म - संवर कहा है ।

586. असंयत

आरओ परओ वाऽवि,
दुहाऽविय असंजया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1404]

— ***सूत्रकृतांग 1/8/6***

कुछ लोग लोक और परलोक-दोनों ही दृष्टियों से असंयत होते हैं ।

587. अज्ञानी, पापी

राग दोसस्सिया बाला,
पावं कुव्वंति ते बहुं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1405]

— *सूत्रकृतांग 1/8/8*

अज्ञानी जन राग-द्वेष का आश्रय लेकर बहुत पाप करते हैं।

588. स्वजन संवास अनित्य

अणियते अयं वासे, णायएहिं सुहीहिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1405]

— *सूत्रकृतांग 1/8/12*

सुखशील ज्ञातिजनों और सुहृद्जनों के साथ जो संवास है, वह भी अनित्य है।

589. भोग, दुःखावास

भुज्जो भुज्जो दुहोवासं,
असुहत्तं, तहा तहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1405]

— *सूत्रकृतांग 1/8/11*

भोगों की तल्लीनता बार-बार दुःखों का ही घर है और ज्यों-ज्यों दुःख, त्यों-त्यों अशुभ कर्म बढ़ते ही रहते हैं।

590. वैर-वृत्ति

वेराइं कुव्वइ वेरी, तओ वेरेहिं रज्जती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1405]

— *सूत्रकृतांग 1/8/7*

वैरवृत्तिवाला व्यक्ति जब देखो तब वैर ही करता रहता है। वह एक - के बाद एक किए जानेवाले वैर से वैर को बढ़ाते रहने में ही रस लेता है।

591. पाप, दुःखद

पावोवगा य आरंभा,
दुक्खफासा य अंतसो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1405]

— *सूत्रकृतांग 1/8/7*

पापानुष्ठान अन्ततः दुःख ही देते हैं।

592. ज्ञानी-शरण

आरियं उवसंपज्जे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1406]

— *सूत्रकृतांग 1/8/13*

ज्ञानी की शरण में जाओ ।

593. प्रशिक्षण

सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1406]

— *सूत्रकृतांग 1/8/15*

पंडित पुरुष पण्डितमरण की शिक्षा का प्रशिक्षण लें ।

594. अनासक्ति

मेहावी, अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1406]

— *सूत्रकृतांग 1/8/13*

बुद्धिमान साधक चारों ओर से अपनी आसक्ति हटा दे ।

595. संलेखना-प्रशिक्षण

जं किंचुवक्कमंजाणे, आउक्खेमस्स अप्पणो ।
तस्सेव अन्तरा खिप्पं, सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1406]

— *सूत्रकृतांग 1/8/15*

यदि पंडित पुरुष किसी प्रकार अपनी आयु का क्षयकाल जान ले तो उससे पूर्व शीघ्र ही वह संलेखना रूप शिक्षा का प्रशिक्षण लें ।

596. रहो, कच्छपवत्

जहा कुम्मे स अंगाइं, सए देहे समाहरे ।
एवं पावाइं मेधावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1406]

— *सूत्रकृतांग 1/8/16*

कछुआ जिसप्रकार अपने अंगों को अन्दर में समेट कर खतरे से बाहर हो जाता है वैसे ही साधक भी अध्यात्म योग के द्वारा अन्तर्मुख होकर अपने को पाप वृत्तियों से सुरक्षित रखें ।

597. बोलो, परिमित

अप्पं भासेज्ज सुव्वए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1407]

— ***सूत्रकृतांग 1/8/25***

सुव्रती साधक कम बोले ।

598. संयम में यत्नशील

खंते अभिनिव्वुडे दंते,
वीतगिद्धी सदा जए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1407]

— ***सूत्रकृतांग 1/8/25***

आत्महितैषी साधक क्षमाशील, क्रोध-लोभादि कषाय से रहित परम शान्त, जितेन्द्रिय और विषयभोगों में अनासक्त रहकर संयम में सदा प्रयत्नशील बने ।

599. तपश्चरण अशुद्ध

तेसिं पि तवो ण सुद्धो,
निक्खंता जे महाकुला ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1407]

— ***सूत्रकृतांग 1/8/24***

जो महान् कुल में जन्मे हुए हैं, लेकिन जिनका ध्येय अपनी यश. कीर्ति और पूजा प्रतिष्ठा ही हैं उनकी तपश्चर्या भी शुद्ध नहीं है ।

600. खाओ-पीओ, मित

अप्पपिंडासि पाणासि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1407]

— ***सूत्रकृतांग 1/8/25***

सुव्रती साधक कम खाए, कम पीये ।

601. देहभाव-विसर्जन

झाण जोगं समाहट्टु,
कायं विउसेज्ज सव्वसो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1407]

— *सूत्रकृतांग 1/8/26*

ध्यानयोग का अवलम्बन कर देहभाव का सर्वतोभावेन विसर्जन करना चाहिए ।

602. जय-पराजय

सवीरिए पराइणइ, अवीरिए पराइज्जइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1408]

— *भगवती सूत्र 1/8*

शक्तिशाली (वीर्यवान) जीतता है और शक्तिहीन (निर्वीय) पराजित हो जाता है ।

603. जीव-स्वरूप

जीवा णो वड्ढंति नो हायंति अवट्ठिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1419]

— *भगवतीसूत्र 5/8*

जीव न बढ़ते हैं, न घटते हैं, किंतु सदा अवस्थित रहते हैं ।

604. वैयावृत्त्य-परिभाषा

वैयावृत्त्यम-भक्तादिभि
र्धर्मोपग्रहकारिवस्तुभिरूपग्रहकरणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ. 1451]

— *स्थानांग टीका 5/1*

धर्म में सहारा देनेवाली आहार आदि वस्तुओं द्वारा उपग्रह - सहायता करना "वैयावृत्त्य" कहलाता है । ('वैयावृत्त्य' शब्द सेवा के अर्थ का प्रतीक है ।)

605. रुग्ण-सेवा से निर्जरा

गेलण वेयावच्चे करेमाणे समणे निग्गंथे
महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1451]
– *व्यवहार 10/37*

श्रमण रुग्णसाथी की सेवा करता हुआ महान् निर्जरा और महान पर्यवसान (परिनिर्वाण) करता है ।

606. वैयावृत्य से तीर्थंकर

वेयावच्चेणं तित्थयर नामगोयं कम्मं निबंधइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1460]
– *उत्तराध्ययन 29/43*

वैयावृत्य (सेवा) से आत्मा तीर्थंकर होने जैसे उत्कृष्ट पुण्य कर्म का उपार्जन करती है ।

607. भूख, वेदना

णत्थि छुहाए सरिसया वियणा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 6 पृ 1624]
– *ओघनिर्युक्ति भाष्य 290*

संसार में भूख के समान कोई वेदना नहीं है ।

प्रथम
परिशिष्ट
अकारादि अनुक्रमणिका

अकारादि अनुक्रमणिका

232.	अणणुवीयि भासी से णिग्गंथे ।	6	330
259.	अबंभचरियं घोरं ।	6	426
267.	अप्पं पि सुयमहियं ।	6	443
284.	अहं ममेति मन्त्रोऽयं ।	6	457
289.	अमित्रं कुरुते मित्रं ।	6	459
290.	अर्थवन्त्युपपन्नानि ।	6	459
292.	अबंभयारी जे केइ ।	6	463
300.	अत्थंगयम्मि आइच्चे ।	6	510
313.	असारस्य पदार्थस्य ।	6	697
315.	अजीवा जीव पइट्ठिया ।	6	714
319.	अणंते नितिए लोए ।	6	723
322.	अणाणाए मुणि णो पडिलेहंति ।	6	727
328.	अणाणाए पुट्ठावि एगे नियट्टंति ।	6	727
336.	अपारंगमा एए नो ।	6	731
339.	अणोहंतरा ए ए नो ।	6	731
342.	अतीरंगमा ए ए ।	6	731
351.	अमराइय महासड्ढी ।	6	734
357.	अविमणे वीरे तम्हा ।	6	736
382.	असमियंति मन्नमाणस्स ।	6	747
393.	अरूपी सता अपयस्सपयं नत्थि ।	6	749
409.	अप्पणट्ठा परट्ठा वा ।	6	887
412.	अविस्सासो य भूयाणं ।	6	887
417.	अवि अप्पणो विदेहंमि ।	6	887
420.	अहिंसा निउणा दिट्ठा ।	6	888
460.	अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा ।	6	1159
463.	अणुसासिओ न कुप्पिज्जा ।	6	1160
478.	अप्पामेव दमेयव्वो ।	6	1162

479.	अप्पा हु खलु दुद्दमो ।	6	1162
480.	अप्पा दंतो सुही होइ ।	6	1162
488.	अणुसासणमोवायं ।	6	1164
493.	अप्पाणं पि ण कोवए ।	6	1166
518.	असंविभागी न हु तस्स मुक्खो ।	6	1173
520.	अलद्धुअं नो परिदेवइज्जा ।	6	1173
524.	अणासए जो उ सहिज्ज ।	6	1173
553.	अकसाइ भिक्खू ।	6	1180
556.	अभिसंधए पाव विवेग भिक्खू ।	6	1180
557.	अलुसए णो पच्छन्नभासी ।	6	1181
567.	अणुसोयपट्ठिए बहुजणम्मि ।	6	1247
568.	अणुसोय सुहोलोगो ।	6	1247
569.	असंकिलिट्ठेहिं समं वसेज्जा ।	6	1248
588.	अणियते अयं वासे ।	6	1405
597.	अप्पं भासेज्ज सुव्वए ।	6	1407
600.	अप्पपिंडासि पाणासि ।	6	1407
142	असासया वासमिणं ।	6	294
	आ		
15.	आयगुत्ते सयादंते ।	6	45
60.	आहारोवचया देहा ।	6	126
122.	आकाङ्क्षा दुःखमुत्तमम् ।	6	191
134.	आ-संबरो अ सेयंबरो अ ।	6	276
340.	आयाणिज्जं च आयाय तंमि ।	6	731
389.	आवट्टं तु पेहाए एत्थ ।	6	748
403.	आहच्च हिंसा समितस्स जा उ ।	6	871
425.	आगमबलिया समणा ।	6	906
437.	आरंभसत्ता पकरेंति संगं ।	6	1062

454.	आणानिद्देसकरे ।	6	1158
456.	आणाऽनिद्देसकरे ।	6	1158
467.	आहच्च चंडालियं कट्टु ।	6	1160
481.	आयरिएहिं वाहितो ।	6	1163
482.	आलवंते लवंते वा ।	6	1163
483.	आसणगओ ण पुच्छिज्जा ।	6	1163
495.	आयरियं कुवियं नच्चा ।	6	1166
506.	आयरिय पाया पुण अप्पसन्ना ।	6	1169
507.	आसायणं नत्थि मोक्खो ।	6	1169
523.	आयरिअं अग्गिमिवाहि अग्गी ।	6	1173
555.	आणाइसुद्धं वयणं भिज्जे ।	6	1180
586.	आरओ परओवाऽवि ।	6	1404
592.	आरियं उवसंपज्जे ।	6	1406
	इ		
77.	इच्छालोभं न सेविज्जा ।	6	133
101.	इक्को जायइ मरइ ।	6	140
106.	इक्को करेइ कम्मं ।	6	148
128.	इय दुल्लह लंभं माणुसत्तणं ।	6	248
338.	इणमेव नावकंखंति ।	6	731
149.	इमं सरीरं अणिच्चं ।	6	294
177.	इहलोगे निप्पिवासस्स ।	6	296
399.	इमंपि जाइ धम्मयं ।	6	806-807
435.	इह संतिगया दविया ।	6	1061
	ई		
32.	इंगिताकारै ज्ञैयैः ।	6	83
74.	इंदिएहिं गिलायन्तो ।	6	132

उ

9.	उड्ढं अहे तिरियं च ।	6	43
130.	उपाध्यायान् दशाचार्यः ।	6	251
173.	उग्गं महव्वयं बंभं ।	6	295
304.	उलूक-काक-मार्जार ।	6	510
320.	उक्कसं जलणं णूमं ।	6	724
344.	उद्देसो पासगस्स नऽत्थि ।	6	732
376.	उट्ठिए नो पमायए ।	6	743
391.	उड्ढं सोया अहे सोया ।	6	748
564.	उपदेशः शुभो नित्यं ।	6	1191

ए

6.	एक रात्रौषितस्यापि ।	6	34
10.	एयं खु णाणिणो सारं ।	6	43
30.	एगग्गचित्तेणं जीवे ।	6	83
41.	एगे मरणे अंतिम सारीरियाणं ।	6	108
61.	एगे अहमंसि, न मे अत्थि कोइ ।	6	127
62.	एगागिणमेव अप्पाणं ।	6	127
87.	एसा जिणाणआणा ।	6	137
94.	एवं उवट्ठियस्सवि आलोए उ ।	6	137
174.	एवं धम्मंपि काउणं ।	6	295
175.	एवं धम्मं अकाऊण ।	6	295
251.	एगे मोक्खे ।	6	431
286.	एगोऽहं नऽत्थि मे कोइ ।	6	457
306.	एक भक्ताशनान्नित्य ।	6	510
326.	एत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना ।	6	727
346.	एस वीरे पसंसिए ।	6	733
371.	एत्थवि बाले परिपच्चमाणे ।	6	742

372.	एत्थ मोहे पुणो पुणो ।	6	742
373.	एगे रुवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे ।	6	742
508.	एवाऽऽयरियं उवचिट्ठएज्जा ।	6	1169
511.	एवं धम्मस्स विणओ ।	6	1170
561.	एत्थारभत्ती अणुवीइ वायं ।	6	1181

ओ

534.	ओहारणिं अप्पिअकारिणिं च ।	6	1174
551.	ओए तहीयं फरुसं वियाणे ।	6	1180

अं

70.	अंतो बहिं विउस्सिज्ज ।	6	131
345.	अंतो अंतो पूइ देहंतराणि ।	6	733
387.	अंजु चेय पडिबुद्धजीवी ।	6	747

क

66.	कसाये पयणू किच्चा ।	6	130
82.	कयपावोवि मणूसो ।	6	136
179.	कप्पिओ फालिओ छिन्नो ।	6	297
458.	कणकुंडगं जहित्ताणं ।	6	1159
468.	कडं कडे त्ति भासिज्जा ।	6	1160
470.	कसं व दट्ठु माइन्नो ।	6	1160
538.	कहं कहं वा वितिगिच्छतिन्ने ।	6	1177

का

46.	कामभोगाणुराएणं ।	6	118
240.	कारणसएसु लुद्धो लोलो ।	6	331
347.	कामा दुरतिक्कमा ।	6	733
349.	काम कामी खलु अयं पुरिसे ।	6	733
472.	कालेण य अहिज्जित्ता ।	6	1160

465.	खंतिं सेवेज्ज पंडिए ।	6	1160
598.	खंते अभिनिव्वुडे दंते ।	6	1407
	ग		
127.	गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं ।	6	243
312.	गर्जति शरदि न वर्षति ।	6	697
	गा		
50.	गारत्थेहि य सव्वेहिं ।	6	121
58.	गामे वा अदुवा रणे ।	6	124
185.	गारवेसु कसायसुदंड ।	6	300
	गि		
52.	गिहवासोऽवि सुव्वओ ।	6	122
430.	गिहि संथवं न कुज्जा ।	6	959
533.	गिण्हाहि साधुगुण मुंच असाहू ।	6	1174
570.	गिहिणो वेयावडियं न कुज्जा ।	6	1248
	गु		
162.	गुणाणं तु सहस्साइं ।	6	295
368.	गुरु से कामा ।	6	741
525.	गुरुं तु नासाययई स पुज्जो ।	6	1173
529.	गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू ।	6	1174
	गे		
605.	गेलण वेयावच्चे करेमाणे ।	6	1451
	गो		
299.	गोवालो भंडवालो वा ।	6	498
	गं		
72.	गंथेहिं विवित्तेहिं ।	6	131

सूक्ति क्रमांक	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	च		
3.	चत्तारि मंगलं-अरिहंतामंगलं ।	6	16
33.	चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्सताए ।	6	99
140.	चइत्ताणं इमं देहं ।	6	294
151.	चउव्विहेऽवि आहारे ।	6	295
264.	चरणगुण विप्पहीणो ।	6	442
276.	चरित्तेणं निगिण्हाई ।	6	448
531.	चउक्कसायावगए स पुज्जो ।	6	1174
	ची		
51.	चीराजिणं निगिणिणं ।	6	121
	छि		
105.	छिंदं ममत्तं सुविहिय ।	6	144
	ज		
47.	जहा सागडिओ जाणं ।	6	120
110.	जह-जह दोसोवरमो ।	6	149
117.	जस्स न छुहा न तण्हा ।	6	150
147.	जह किंपागफलाणं ।	6	294
148.	जम्म दुक्खं जरा दुक्खं ।	6	294
152.	जहा तुलाए तोलेउं ।	6	295
153.	जहा भुयाहिं तरिउं ।	6	295
154.	जहा अग्गिसिहा दित्ता ।	6	295
159.	जवा लोहमया चेव ।	6	295
160.	जहा गेहे पलितम्मि ।	6	295
161.	जहा दुक्ख भारेउं जे ।	6	295
269.	जहा खरो चंदणभारवाही ।	6	443
298.	जइ मज्झ कारणा एए ।	6	496
329.	जहेत्थ कुसले ।	6	728

350.	जहा अंतो तहा बाहिं ।	6	733
402.	जहा जहा अप्पतरा से जोगा ।	6	870
442.	जइ नऽत्थि नाण चरणं ।	6	1094
455.	जहा सुणी पूइकण्णी ।	6	1158
509.	जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे ।	6	1169
527.	जस्सेयं दुहओ नायं ।	6	1173
572.	जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं ।	6	1248
573.	जस्सेरिया जोग जिइंदियस्स ।	6	1248
596.	जहा कुम्मे सअंगाइं ।	6	1406

जा

155.	जावज्जीवमविस्सामो ।	6	295
181.	जारिसा माणुसे लोए ।	6	297
257.	जा चिट्ठा सा सव्वा ।	6	360
294.	जाणमाणो परीसाए ।	6	463
334.	जाइ मरणं परिण्णाय ।	6	731
378.	जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं ।	6	743
404.	जाणं करेति एक्को ।	6	871
422.	जावन्ति लोए पाणा ।	6	888

जि

100.	जिणवयणम्मि गुणागर ।	6	139
137.	जिनेषु कुशलचित्तं ।	6	283
448.	जिणजणणी रमणीणं ।	6	1144
535.	जिइंदिए जो सहइ ।	6	1174

जी

63.	जीवियं नाभिकंखेज्जा ।	6	130
348.	जीवियं दुप्पडिवूहगं ।	6	733
603.	जीवा णो वुड्ढंति नो हायंति ।	6	1419

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

जे

57.	जे निव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं ।	6	124
59.	जे वेऽन्ने एएहिं काएहिं ।	6	124
103.	जेण विरागो जायइ ।	6	141
214.	जे विय लोगम्मि अपरिसेसा ।	6	327
263.	जे जत्तिया य हेउ भवस्स ।	6	439
358.	जे ममाइयमइं जहाइ ।	6	736
374.	जे छेए सागारियं न सेवइ ।	6	742
502.	जे यावि मंदत्ति गुरुं वइत्ता ।	6	1168
512.	जेण कीत्ति सुयं सिग्धं ।	6	1170
514.	जे अ चंडे मिए थद्धे ।	6	1171
517.	जे आयरिअ उवज्झायाणं ।	6	1172

जो

40.	जो परिवभइ परं जणं ।	6	107
139.	जो जारिसेण मित्ती ।	6	285
416.	जो सिया सन्निहि कामे ।	6	887
434.	जो जस्स उ पाउगो ।	6	974
503.	जो पावगं जलियं वक्कमेज्जा ।	6	1168
504.	जो पव्वयं सिरसा भेत्तुमिच्छे ।	6	1169
522.	जो छंदमाराहयई स पुज्जो ।	6	1173
574.	जो पुव्वरत्तावररत्त काले ।	6	1248

जं

84.	जं कुणइ भावसल्लं ।	6	136
85.	जं पुव्वं तं पुव्वं जहाणुपुव्विं ।	6	136
195.	जं सम्मत्तं पासह, तं मोणं पासह ।	6	309
295.	जं णिस्सितो उव्वहइ ।	6	463
410.	जं पि वत्थं च पायं वा ।	6	887

595.	जं किंचुवक्कमं जाणे ।	6	1406
486.	जं मे बुद्धाऽणुसासंति ।	6	1164
	ज्		
200.	ज्योतिर्मयीव दीपस्य ।	6	311
	झा		
601.	झाण जोगं समाहट्टु ।	6	1407
	ड		
539.	डहरेण वुड्ढेणणुसासिए उ ।	6	1177
	ण		
8.	ण विरुज्झेज्ज केणई ।	6	43
230.	णय परस्सपीड़ाकरं सावज्जं ।	6	330
309.	णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया ।	6	579
316.	ण एवं भूतं वा भव्वं वा ।	6	715
429.	ण उच्चावयं मणं णियंछेज्जा ।	6	959
498.	णच्चा णमइ मेहावी ।	6	1167
541.	ण यावि किंचि फरुसं वदेज्जा ।	6	1178
545.	ण याऽवि पन्ने परिहास कुज्जा ।	6	1179
546.	ण या ऽऽसियावाय ।	6	1179
554.	ण कत्थइ भास विहिंसइज्जा ।	6	1180
607.	णत्थि छुहाए सरिसया वियणा ।	6	1624
	णा		
254.	णाणातिकारणावेक्ख ।	6	340
256.	णाणुज्जोया साधु ।	6	355
360.	णारतिं सहती वीरे ।	6	736
473.	णाऽपुट्ठो वागरे किंचि ।	6	1161
	णि		
388.	णिट्ठियट्ठी वीरे आगमेण ।	6	748

णो

331.	णो हीणे णो अइरिते ।	6	729
544.	णो छायए णो ऽवि य ।	6	1179
550.	णो तुच्छए णो य ।	6	1180

त

48.	तओ से मरणंतम्मि ।	6	120
194.	तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं ।	6	301
262.	तपोधनानां पादेन स्पर्शनं ।	6	438
279.	तवेण परिसुज्झइ ।	6	448
333.	तम्हा पंडिए नो हरिसे ।	6	729
462.	तम्हा विणय मेसिज्जा ।	6	1159
578.	तणकट्ठेण व अग्गी ।	6	1257
579.	तणकट्ठेण व अग्गी ।	6	1257
582.	तवेसु व उत्तम बंभचेरं ।	6	1394

ति

80.	तितिक्खं परमं नच्चा ।	6	134
252.	तिविहा मूढा पण्णता तं जहा ।	6	337
272.	तिण्हंपि समाओगे मोक्खो ।	6	444

तु

54.	तुलिया विसेसमायाय ।	6	123
386.	तुमंसि नाम सच्चेव जं ।	6	747

तृ

125.	तृष्णे ! देवि ! विडम्बनेय ।	6	193

ते

599.	तेसिं पि तवो ण सुद्धो ।	6	1407

तं

129.	तं तह दुल्लह लंभं ।	6	248

	ध		
56.	धम्ममायाणह ।	6	124
370.	धम्मंपि य नाणं सारियं विंति ।	6	741
496.	धम्मज्जियं च ववहारं ।	6	1166
	धा		
475.	धारिज्जा पियमप्पियं ।	6	1161
	धी		
104.	धीरेण वि मरियव्वं ।	6	142
	धं		
293.	धंसेइ जो अभूएंण ।	6	463
	न		
36.	न बाहिरं परिभवे ।	6	106
45.	न मे दिट्ठे परे लोए ।	6	118
55.	न संतसंति मरणं ते ।	6	123
93.	नवि अत्थि नऽवि य होहि ।	6	137
98.	नवि तं कुणइ अमित्तो ।	6	139
102.	न हु सक्को तिप्पेउं ।	6	140
111.	न हु पावं हवइ हियं ।	6	149
115.	नऽवि माया नऽवि य पिया ।	6	150
337.	नत्थि कालस्स णागमो ।	6	731
383.	न जायते म्रियते वा कदाचित् ।	6	747
423.	न हणे नो विघायए ।	6	888
484.	न पक्खओ न पुरओ ।	6	1163
494.	न सिया तोत्तगवेसए ।	6	1166
510.	न आवि मुक्खो गुरुहीलणाए ।	6	1169
565.	न ग्राह्याणि न देयानि ।	6	1208
576.	न जातु कामः कामना ।	6	1256

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	ना		
73.	नाइवेलं उवचरे माणुस्से ।	6	131
88.	नाणसहियं चरितं ।	6	137
89.	नाणेण विणा करणं ।	6	137
92.	नाणेण य करणेण य ।	6	137
95.	नाणं सुसिक्खियव्वं ।	6	137
273.	नाणं पयासयं ।	6	444
280.	नाणं च दंसणं चेव ।	6	448
281.	नाणेण जाणइ भावे ।	6	448
297.	नाणेणं दसणेणं च ।	6	496
364.	नाणं संजमं सारं ।	6	741
441.	नाणम्मि असंतम्मि ।	6	1094
443.	नाणेण नज्जए चरणं ।	6	1094
558.	नातिवेलं वदेज्जा ।	6	1181
	नि		
13.	निव्वाणं परमं बुद्धा ।	6	45
184.	निम्ममो निरहंकारो ।	6	300
288.	निर्मल स्फटिकस्येव ।	6	458
390.	निद्देसं नाइवट्टेज्जा मेहावी ।	6	748
397.	निव्वियारेणं जीवे वइगुत्ते ।	6	759
432.	निउणो खलु सुत्तत्थो ।	6	971
433.	निक्कारणम्मि दोसा ।	6	973
461.	निरट्ठाणि उवज्जए ।	6	1159
540.	निद्दं च भिक्खू न पमाय कुज्जा ।	6	1177
548.	निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ।	6	1180
584.	निव्वाणसेट्ठा जह ।	6	1394

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोश भाग	पृष्ठ
	नै		
307.	नैवा हुति र्न च स्नानं ।	6	510
	नो		
183.	नो हीलए नो विय खिंसइज्जा ।	6	299-1174
379.	नो निहणिज्ज वीरियं ।	6	744
	प		
7.	पमू दोसे निरा किच्चा ।	6	43
21.	परब्रह्मणि मग्नस्य ।	6	48
182.	परिकम्मं को कुणइ ।	6	299
221.	पव्वयकडकाहिं मुच्चंते ।	6	327
239.	पर परिभवकारणं च हासं ।	6	331
244.	परपरिवायप्पियं च हासं ।	6	331
247.	परपीडाकारगं च हासं ।	6	331
255.	पमाया दप्पा भवति ।	6	340
287.	पश्यन्नेव परं द्रव्यं ।	6	457
401.	पमत्ते अगारमावसे ।	6	806
436.	पहु एजस्स दुगुंछणाए ।	6	1061
585.	पमाय कम्ममाहंसु ।	6	1404
	पा		
157.	पाणाइवाय विरइ ।	6	295
355.	पावकम्मं नेव कुज्जा ।	6	735
421.	पाणिवहं घोरं ।	6	888
591.	पावोवगाय आरंभा ।	6	1405
	पु		
35.	पुत्रा मे भ्राता मे, स्वजना मे ।	6	104
108	पुत्ता-मित्ता य पिया ।	6	148

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश		अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
400.	पुणो पुणो गुणासए ।		6	806
476.	पुट्ठो वा नाऽलियं वए ।		6	1161
492.	पुत्तो मे भाय नाइत्ति ।		6	1165
		पू		
377.	पूढो छंदा इह माणवा ।		6	743
		पं		
43.	पंडियाणं सकामं तु ।		6	117
196.	पंतं लूहं सेवंति वीरा सम्मत्तंदंसिणो ।		6	309
		प्र		
19.	प्रत्याहृत्येन्द्रिय-व्यूहं ।		6	47
		प्रा		
451.	प्रायेणाधममध्यमोत्तम ।		6	1144
		प्रि		
227.	प्रियं सत्यं वाक्यं हरति ।		6	328
		फ		
487.	फरुसमप्पणुसासणं ।		6	1164
		ब		
296.	बहुजणस्स नेयारं ।		6	463
466.	बहुयं माय आलवे ।		6	1160
		बा		
44.	बालाणं अकामं तु मरणं ।		6	117
136.	बाह्येन्द्रियाणि (कर्मेन्द्रिय) संयम्य ।		6	278
169	बाहाहिं सागरो चेव ।		6	295
164.	बालुया कवले चेव ।		6	295
384.	बालभावे अप्पाणं ।		6	747
464.	बालेहिं सह संसग्गिं ।		6	1160
490.	बालं सम्मइ सासंतो ।		6	1165

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	बु		
11	बुज्झमाणाण पाणाणं ।	6	45
12.	बुद्धामोत्ति य मन्नंता ।	6	45
68.	बुद्धा धम्मस्स पारगा ।	6	130
	ब्र		
124.	ब्रह्मा लून शिरोहरिदृशिसरुक् ।	6	193
575.	ब्रह्महत्या सुरापानं ।	6	1249
	भ		
248.	भयं परियाणई से निऽगंथे ।	6	331
250.	भयापत्ते भीरु समावइज्जा ।	6	331
	भा		
166.	भासियव्वं हियं सच्चं ।	6	295
	भि		
53.	भिक्खाए वा गिहत्थे वा ।	6	122
	भु		
589.	भुज्जो भुज्जो दुहोवासं ।	6	1405
	भू		
330.	भूएहिं जाण पडिलेह सायं ।	6	729
	भे		
75.	भेउरेसु ण रज्जेज्जा ।	6	133
	म		
25.	मद्यं पुनः प्रमादाङ्गं ।	6	60
27.	मनोवत्सो युक्तिगवीं ।	6	64
31.	मणगुत्तयाएणं जीवे ।	6	83
34.	मद्दवयायेणं अणुस्सियत्तं जणयइ ।	6	104
64.	मरणं नोविपत्थए ।	6	130

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति-वाक्यांश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
71.	मज्झत्थो निज्जरापेही ।	6	131
180.	महब्भयाओ भीमाओ ।	6	297
186.	ममत्तं छिंदइ ताहे ।	6	300
192.	ममत्तबंधं च महब्भयावहं ।	6	301
198.	मन्यते यो जगत्तत्वं ।	6	309
222.	मणुगयाणं वंदणिज्जं ।	6	327
253.	मरणस्य मूलं दुःखं ।	6	337
497.	मणोगयं वक्कगयं ।	6	1166
566.	महुमज्जमंस भेसज्जमूल ।	6	1208
	मा		
114	माणुस जाइ बहुविचिता	6	150
132.	माया विजएणं उज्जुभावं जणयइ ।	6	255
143.	माणुसत्ते असारम्मि ।	6	294
310.	माता भूत्वा दुहिता ।	6	594
314.	'मातुः पुरो मातुलवर्णनं तत्' ।	6	697
321.	माया मे त्ति पिया मे ।	6	725
469.	मा गलियस्सेव कसं ।	6	1160
471.	माय चंडालियं कासी ।	6	1160
547.	माणं ण सेवेज्ज पगासणं च ।	6	1179
	मु		
39.	मुणी ण मिज्जइ ।	6	107
197.	मुणी मोणं समायाय धुणे ।	6	309
414.	मुसावाओ उ लोगम्मि सव्व ।	6	887
202.	मुत्तीएणं अकिंचणत्तं जणयइ ।	6	318
418.	मुच्छा परिग्गहो पुत्तो ।	6	887
457.	मुहरी निक्कसिज्जइ ।	6	1158
519.	मुहुत्तदुक्खाउ हवंति कंटया ।	6	1173

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	मू		
260.	मूलमेयमहम्मस्स ।	6	427
445.	मूलं कोहो दुहाण सव्वाणं ।	6	1144
446.	मूलं माणो अणत्थाणं ।	6	1144
	मृ		
302.	मृते स्वजन मात्रेऽपि ।	6	510
	मे		
594.	मेहावी, अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ।	6	1406
	मो		
282.	मोहेण गब्भं मरणाइ एइ ।	6	456
	मं		
1	मंगिज्जएऽधिगम्मइ ।	6	8
323.	मंदा मोहेण पाउडा ।	6	727
	मां		
2	मां गालयति भवादिति ।	6	9
4	मां स भक्षयिताऽमुत्र ।	6	32
	य		
20.	यस्य ज्ञान-सुधा-सिन्धौ ।	6	48
23	यस्य दृष्टिः कृपावृष्टिः ।	6	50
311.	यथा नेत्रे तथा शीलं ।	6	595
361.	यथा चिन्तामणिं दत्ते ।	6	740
	यो		
285.	यो न मुह्यति लग्नेषु ।	6	457
	र		
301.	रक्तीभवन्ति तोयानि ।	6	510
489.	रमए पंडिए सासं ।	6	1165

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	रा		
81.	रागदोसाभिहया ।	6	135
99.	रागेण व दोसेण व अहवा ।	6	139
258.	रागदोसाणुगया तु दप्पिया ।	6	426
521.	रायणाहिएसुं विणयं पउंजे ।	6	1173
587.	राग दोसस्सिया बाला ।	6	1405
	ल		
86.	लज्जाए गारवेण य ।	6	136
	ला		
187.	लाभालाभे सुहे-दुक्खे ।	6	300
	लु		
236.	लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं ।	6	331
243.	लुद्ध लोलो भणेज्ज ।	6	331
	लो		
237.	लोभपत्ते लोभी समावइज्जा ।	6	331
238.	लोभं परिजाणइ से णिग्गंथे ।	6	331
241.	लोभो न सेवियव्वो ।	6	331
325.	लोभमलोभेण दुगुंछमाणे ।	6	727
363.	लोकसंज्ञामहानद्यामनु ।	6	740
367.	लोक संज्ञोज्झितः साधुः ।	6	741
369.	लोगस्स सार धम्मो ।	6	741
394.	लोभ विजएणं सन्तोसी ।	6	755
411.	लोहस्सेस अणुप्फासो ।	6	887
	व		
5.	वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन ।	6	34
223.	वहबंधाभियोग वेरघोरेहिं ।	6	327
395.	वयण विभत्तीकुसलो ।	6	758

सूक्ति संख्या	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
560.	विणएण णरो गंधेण ।	6	1181
577.	विषस्य विषयाणां च ।	6	1256
	वी		
580.	वीयरागयाए णं णेहाणु ।	6	1336
	वे		
590.	वेराइं कुव्वइ वेरी ।	6	1405
606.	वेयावच्चेणं तित्थयर ।	6	1460
	वै		
604.	वैयावृत्यम-भक्तादिभिः ।	6	1451
	वो		
76.	वोसिरे सव्वसो कायं ।	6	133
	वं		
359.	वंता लोगसन्नं, से मइमं ।	6	736
398.	वंदणएणं नीयागोयं ।	6	770
	स		
14.	सदा जए दंते निव्वाणं ।	6	45
26.	समशीलं मनो यस्य स ।	6	64
78.	सव्वट्ठेहिं अमुच्छिए ।	6	134
107.	सयणस्स य मज्झगओ ।	6	148
119.	सज्ज्ञानं परमं मित्रं ।	6	191
163.	सव्वारंभ परिच्चाओ ।	6	295
165.	समया सव्वभूएसु ।	6	295
176.	सरीरमाणसा चेव वेयणाओ ।	6	296
203.	सव्वा उ मंतजोगा सिज्झंति ।	6	326
204.	सच्चं जसस्समूलं ।	6	326
206.	सच्चं....पभासकं भवति सव्वभावाण ।	6	327
207.	सच्चं लोगम्मि सारभूयं ।	6	327

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
208.	सच्चं....सोमतरं चंदमंडलाओ ।	6	327
209.	सच्चं पि य संजमस्स ।	6	327
211.	सच्चेण य तत्ततेल्ल तउलोह ।	6	327
212.	सच्चेण य उदग संभमम्मि ।	6	327
213.	सच्चेण य अगणि संभमम्मि ।	6	327
215.	सच्चेण महासमुद्दमज्झे वि ।	6	327
216.	सच्चवयणं सुद्धं सुचियं ।	6	327
217.	सच्चं लोगम्मि सारभूयं गंभीरतरं ।	6	327
218.	सच्चवयण तत्र णियम ।	6	327
225.	सत्येनाग्निभवेच्छीतो ।	6	328
226.	समिक्खियं संजएण ।	6	328-330
228.	सत्याद् वाक्याद् व्रत ।	6	328
233.	सच्चं च हियं च ।	6	330
278.	सम्मत्तेण य सद्दहे ।	6	448
308.	सव्वाहारं न भुंजंति ।	6	510
353.	सएण विप्पमाएण ।	6	735
354.	सएण दुक्खेण मुढे ।	6	735
380.	समियाए धम्मे ।	6	744
385.	समियंति मन्नमाण समिया ।	6	747
392.	सव्वे सरा नियट्टंति ।	6	748
419.	सव्वे जीवा वि इच्छंति ।	6	888
444.	सव्वजगुज्जोयकरं नाणं ।	6	1094
583.	सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ।	6	1394
602.	सव्वारिए पराइणइ ।	6	1408
	सा		
158.	सामण्णं पुत्त दुच्चरं ।	6	295
220.	सा देव्वाणि य देवयाओ ।	6	327

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति-अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	सि		
501.	सिओ हु से पावयं नो डहिज्जा ।	6	1168-1169
505.	सिया हु सीसेण गिरिं पिभिंदे ।	6	1169
593.	सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिए ।	6	1406
	सु		
37.	सुयलाभे न मज्जेज्जा ।	6	106
83.	सुहुमंपि भावसल्लं अणुद्धरित्ता ।	6	136
135.	सुट्ठुवि मेह समुदये ।	6	277
193.	सुहावहंधम्मधुरं अणुत्तरं ।	6	301
199.	सुलभं वागनुच्चारं ।	6	310
266.	सुबहुंपि सुयमहियं ।	6	442
317.	सुरुवा पोग्गला ।	6	721
318.	सुविसुद्ध सीलजुत्तो पावइ ।	6	722-1181
562.	सुविशुद्ध सीलजुत्तो ।	6	1181
	सू		
543.	सूरोदये पासति चक्खुणेव ।	6	1178
	से		
332.	से असइं उच्चगोए ।	6	729
352.	से मइमं परिन्नाय ।	6	734
356.	से हु दिट्ठे पहे मुणी ।	6	736
366.	से पासति फुसियमिव ।	6	741
542.	सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ।	6	1178
559.	से दिट्ठिमं दिट्ठिण ।	6	1181
	सो		
90.	सो नाम अणसण तवो ।	6	137

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोश भाग	पृष्ठ
274.	सोहओ तवो ।	6	444
	सं		
29.	संजमेण तवमा अप्पाणं ।	6	72
42.	संति मे य दुवे ठाणा ।	6	117
49.	संति एगेहिं-भिक्खूहिं ।	6	121
121.	संतोषः परमं सौख्यं ।	6	191
271.	मंजमो य गुत्तिकरो ।	6	444
291.	संप्राप्तः पण्डितः कृच्छ्रं ।	6	459
303.	संति मे सुहुमा पाणा ।	6	510
365.	मंजमसारं च निव्वाणं ।	6	741
375.	संमयं परिआणओ ।	6	742
407.	संजमहेऊ जोगो ।	6	874
450.	संतप्तायसि मंस्थितः ।	6	1144
526.	संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ।	6	1173
	स्		
28.	स्वागमं रागमात्रेण ।	6	64
362.	स्तोकाहि रत्नवणिजः ।	6	740
	श		
24.	शमशैत्यपुशो यस्य ।	6	50
	शा		
138.	शाठ्येन मित्रं कलुषेण धर्मं ।	6	285
	शु		
438.	शुष्कवादो विवादश्च ।	6	1081
283.	शुद्धात्मद्रव्यमेवाहं ।	6	457
	श्र		
126.	श्रद्धालुतां श्राति पदार्थचिन्तनाद् ।	6	219

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	ह		
268.	हयनाणं कियाहीणं ।	6	443
270.	हयनाणं कियाहीणं हया अण्णाणओ ।	6	443
	हा		
245.	हास ण सेवियव्वं ।	6	331
249.	हासं परिजाणइ से निग्गंथे ।	6	331
251.	हासापत्ते हासी समावइज्जा ।	6	331
	हि		
453.	हियमिय अफरुसवाई ।	6	1154
485.	हियं तं मन्नए पन्नो ।	6	1164
536.	हितं मितं चापरुषं ।	6	1175
	हृ		
305.	हृन्नाभिपद्म संकोचः ।	6	510
	हुं		
112.	हुंति गुणकारगाइं ।	6	149
	हिं		
413.	हिंसगं न मूसं बूया ।	6	887
	ज्ञा		
22.	ज्ञानमग्नस्ययच्छर्म ।	6	49

द्वितीय
परिशिष्ट
विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

[illegible]	[illegible]	[illegible]
29	259	अब्रह्मचर्य त्याज्य
30	260	अब्रह्मचर्य, महादोषों का स्रोत
31	266	अन्धे को दीपक दिखाना
32	283	अहं ब्रह्मास्मि
33	287	अमूढ, अखिन्न
34	328	अस्थिर साधक
35	341	अज्ञसाधक
36	351	अजर-अमर मान्यता
37	355	असत् कर्म त्याज्य
38	405	अप्रमत्त, निर्जराभागी
39	408	असंग्रही साधक
40	412	असत्य, अविश्वसनीय
41	414	असत्य निन्दनीय
42	420	अहिंसा-दर्शन
43	436	अहिंसक समर्थ
44	446	अनर्थ-मूल, मान
45	456	अविनीत कौन ?
46	463	अनुशासन प्रिय
47	464	अज्ञानी संसर्ग वर्ज्य
48	469	अड़ियल शिष्य
49	482	अनुशासित शिष्य
50	485	अज्ञ-प्राज्ञ शिष्य
51	488	अनुशासित प्राज्ञ शिष्य
52	505	अवहेलना से अमुक्ति
53	513	अविनीत दुःखी
54	542	असत् आचरण-वर्जन
55	547	अहंकार-प्रदर्शन हेय
56	549	अनेकान्त युक्त वचन
57	553	अकषायी भिक्षु
58	561	अनुशासित श्रमण
59	568	अनुस्रोत-प्रतिस्रोत

[illegible]	[illegible]	[illegible]
60	571	अन्तर्निरीक्षण
61	586	असंयत
62	587	अज्ञानी, पापी
63	594	अनासक्ति
		आ
64	32	आकृतिः मन का दर्पण
65	54	आत्मा प्रसन्न कैसे ?
66	62	आत्मा एकाकी
67	82	आलोचना से हल्कापन
68	83	आराधक नहीं
69	85	आनुपूर्वी से आलोचना
70	109	आत्म-चिन्तन
71	122	आकाङ्क्षा महादुःख
72	160	आत्मोद्धार हेतु उद्‌गार
73	281	आत्मा, ज्ञाता
74	288	आत्मा स्फटिकवत्
75	322	आज्ञा रहित मुनि
76	383	आत्मा शाश्वत
77	389	आगमविद्
78	390	आदेश-अनतिक्रमण
79	391	आसक्ति कर्मास्रव द्वार
80	392	आत्मा अनिर्वचनीय
81	393	आत्मा अवाच्य
82	459	आत्महित चाहक
83	478	आत्म-नियन्त्रण
84	479	आत्म-नियन्त्रण दुष्कर
85	507	आशातना से अमुक्ति
86	530	आत्मज्ञानी
87	574	आत्म-विचारणा
88	585	आस्रव-संवर क्या ?

क्रमाङ्क	सूक्ति-क्रमांक	सूक्ति शीर्षक
		इ
89	77	इच्छा-लोभ-वर्जन
		उ
90	194	उत्तम चरित्र
91	334	उपदेश
92	376	उठो, प्रमाद मत करो
		ऊँ
93	332	ऊँच-नीच गोत्र में जन्म
		ऋ
94	387	ऋजु, प्रतिबुद्धजीवी
		ए
95	30	एकाग्र आराधक
96	41	एक बार मरण
97	286	एकत्व भावना
		ऐ
98	102	ऐहिक सुख से अतृप्ति
		क
99	57	कर्म-बन्धन से मुक्त
100	66	कषाय-कृशता
101	96	कषाय विजय उपाय
102	201	कर्म-क्षय से मोक्ष
103	310	कर्मण की गति न्यारी
104	320	कषाय चौकड़ी-वर्जन
105	435	करुणाशील अहिंसक
106	466	कम बोलो
107	487	कठोर अनुशासन
108	551	कठोर सत्य मत बोलो
		का
109	46	काम से संक्लेश

क्रमांक	सूक्ति संख्या	सूक्ति शीर्षक
110	124	कामान्ध-परिणाम
111	129	कायर कौन ?
112	347	काम, दुर्लंघ्य
113	349	काम की मृगतृष्णा
114	576	कामभोग अग्निघृतवत्
115	578	कामभोग से अतृप्त
		कि
116	117	किसे प्रयोजन नहीं ?
117	342	किनारे नहीं !
		कु
118	374	कुशल कौन ?
		के
119	275	केवलज्ञान नहीं
		कै
120	209	कैसा सत्य नहीं बोले ?
121	455	कैसा शिष्य बहिष्कृत
		को
122	108	कोई रक्षक नहीं
		कं
123	16	कंक पक्षीवत् पापी-अधम
		क्रि
124	200	क्रिया, ज्ञानमयी
125	268	क्रियाहीन ज्ञान
		क्रो
126	231	क्रोधजेता निर्ग्रन्थ
127	235	क्रोधान्ध
128	242	क्रोधी
129	246	क्रोध-वर्जन
130	474	क्रोध विफल

131	493	क्रोध त्याज्य
		खा
132	600	खाओ-पीओ मित
		ग
133	312	गर्जत सो वर्षत नहीं
		गु
134	297	गुण-वृद्धि
135	440	गुप्त रहस्य कब प्रकट करे ?
136	449	गुण-मूल, विनय
137	489	गुरु प्रसन्न
138	490	गुरु खिन्न
139	497	गुर्वाज्ञा
140	500	गुरु आशातना, विनाश का कारण
141	502	गुरु-आशातना
142	503	गुरु-आशातना अहितकर
143	504	गुरु-आशातना से दुष्परिणाम
144	506	गुरु-कृपा-तत्पर
145	510	गुरु-अवहेलना
146	517	गुरु-सेवा-फल
147	523	गुरु-शुश्रूषा में जागरुक
		गृ
148	50	गृहस्थ बनाम साधु श्रेष्ठ
149	430	गृहस्थ-परिचय निषेध
		गो
150	22	गोता ज्ञान सरोवर का
		ग्र
151	72	ग्रन्थियों से मुक्त
		ग्रा
152	533	ग्राह्य-हेय क्या ?

क्रमाङ्क	सूक्ति-नम्बर	सूक्ति-शीर्षक
		द्वि
217	42	द्विविध-मरण
		ध
218	15	धर्मोपदेष्टा कौन ?
219	56	धर्म
220	58	धर्म कहाँ ?
221	68	धर्मवेत्ता साधक
222	174	धर्मी, सुखी
223	193	धर्म-धुरा
224	428	धर्म का मूल : व्यवहारशुद्धि
225	496	धर्मसंगत व्यवहार
226	581	धर्म, दीपक
		धै
227	104	धैर्य से मृत्यु
		न
228	97	न सुख, न दुःख
229	75	नश्वर काम
230	180	नर्क वेदना की विभीषिका
231	292	नकली ब्रह्मचारी
232	316	न भूतो न भविष्यति
233	326	न घर का न घाट का
234	331	न कोई हीन, न कोई महान्
235	333	न हर्षित, न कुपित
236	565	न देय, न आदेय
		ना
237	181	नारकीय वेदना अनन्त
238	8	ना काहू से वैर
		नि
239	39	निरभिमानी मुनि

[illegible]	[illegible]	[illegible]
240	151	निशि भोजन त्याग दुष्कर
241	156	निरवद्य-निर्दोष ग्राह्य
242	183	निन्दा-अवज्ञा-वर्जन
243	202	निर्लोभता-फल
244	226	निर्णीत सत्य वचन
245	241	निर्लोभता
246	248	निर्ग्रन्थ कौन ?
247	325	निष्काम-साधक
248	397	निर्विकार से ध्यान
249	425	निर्ग्रन्थ-बल क्या ?
250	531	निष्कषायी पूज्य
251	540	निद्रा-प्रमाद-त्याग
252	543	निर्देशक गुरु
253	550	निरपेक्ष साधक
254	556	निर्दोष वचन
255	583	निष्पाप-सत्य
256	584	निर्वाण श्रेष्ठ
		नी
257	471	नीचकर्म-त्याग
		प
258	21	परब्रह्मलीन
259	35	पशुवत् 'मैं' 'मैं'
260	110	परमपद के निकट
261	123	परदोष-परायण
262	137	परमोत्कृष्ट योग बीज
263	147	परिणाम दुःखद
264	182	पक्षी-परिचर्या
265	296	परोपकारी की हत्या से महा मोहबंध
266	329	परिग्रह से अलिप्त
267	409	परपीड़क सत्यासत्य-वर्जन

क्रमांक	सूक्ति नंबर		सूक्ति शीर्षक
311	250		भय से असत्य
312	339		भवपार नहीं
		भा	
313	29		भावितात्मा
314	84		भावशल्य से भ्रमण
315	534		भाषा-विवेकी, पूज्य
		भि	
316	71		भिक्षु कैसा ?
		भू	
317	607		भूख-वेदना
		भो	
318	145		भोग-परिणाम दुःखद
319	400		भोगास्वादी
320	579		भोजन से अतृप्त
321	589		भोग, दुःखावास
		भौ	
322	45		भौतिक दृष्टि
		म	
323	19		मग्नता
324	25		मदिरा-पान-हानि
325	27		मन: बछड़ा-बन्दर
326	28		मध्यस्थदृष्टि, निष्पक्षपाती
327	31		मनो-निग्रह-फल
328	73		मर्यादा का अनुल्लंघन
329	105		ममत्त्व-त्याग
330	262		महान् अनर्थकर
331	293		महामोह से कर्मबन्ध
332	335		मन्दबुद्धि विवेकशून्य
333	356		ममत्त्व-विजेता

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
361	501	मुक्ति असंभव
362	570	मुनि-मर्यादा
		मू
363	138	मूर्ख कौन ?
364	289	मूढ चेता
365	290	मूढ, मगशैलियापाषाण
366	291	मूर्ख, शिलावत्
367	340	मूढ, सत्यपथ में स्थित नहीं
368	371	मूर्ख-धारणा
369	511	मूल और फल
370	515	मूर्खोपदेश कोप-हेतु
		मृ
371	34	मृदुता-फल
372	64	मृत्यु से निष्काम
373	67	मृत्यु-कला के सम्यग्वेत्ता
374	253	मृत्यु-मूल
375	337	मृत्यु, मेहमान
		मे
376	18	मेरुवत् अचल
		मो
377	14	मोक्ष-मार्ग-साधना
378	261	मोक्ष एक
379	282	मोह से जन्म-मरण
380	323	मोहावृत्त पुरुष
381	372	मोह
		मौ
382	197	मौन
383	481	मौन अनुचित कब ?
		मं
384	1	'मंगल'का अर्थ

क्रमांक	सूक्ति क्रमांक	सूक्ति शीर्षक
385	2	'मंगल' शब्द की व्युत्पत्ति
386	3	मंगल चतुष्क
		माँ
387	4	माँस शब्द की निरुक्ति
		मैं
388	61	मैं अकेला
389	284	मैं और मेरा
		य
390	311	यथा आकृति तथा गुण
391	544	यथार्थ उपदेष्टा
		यो
392	434	योग्य में योग्य का आधान
		र
393	596	रहो कच्छपवत्
		रा
394	300	रात्रि भोजन-त्याग
395	301	रात्रि भोजन किसके समकक्ष ?
396	303	रात्रि-भोजन त्याज्य
397	304	रात्रि-भोजन-फल
398	307	रात्रि-वर्जित कार्य
399	308	रात्रि-भोजन-वर्जित
400	336	राग-द्वेषी भवपार नहीं
401	363	राजहंसवत् महामुनि
		रु
402	373	रुपासक्ति-परिणाम
403	605	रुग्ण-सेवा से निर्जरा
		रो
404	309	रोगोत्पत्ति-कारण

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
	ल	
405	343	लक्ष्मी जाने का मार्ग
406	567	लक्ष्यानुरूप गति
	लो	
407	159	लोहे के चने चबाना
408	236	लोभी-लालची
409	237	लोभी
410	240	लोभी झूठों का सरदार
411	243	लोभी-लालची की प्रवृत्ति
412	319	लोक-स्वरूप
413	359	लोकैषणा-त्याग
414	361	लोकरंजनार्थ धर्म-त्याग
415	394	लोभ जय-फल
	व	
416	90	वही अनशन श्रेष्ठ
417	249	वही निर्ग्रन्थ
418	395	वचनगुप्त कौन ?
419	396	वचनगुप्ति-फल
420	398	वन्दन से लाभ
421	424	वह वचनगुप्त नहीं
422	473	वचन-नीति
423	522	वही पूज्य
424	524	वचन-सहिष्णु
425	526	वही पूज्य
426	532	वही पूज्य
	वा	
427	439	वाचना से निर्जरा
428	453	वाणी-विनय
429	457	वाचाल, बहिष्कृत

क्रमांक	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
		ठ
455	426	व्यवहार बलवान्
		व्र
456	404	व्रती-अव्रती की हिंसा में अन्तर
		स
457	5	समान फल किसे ?
458	9	सर्वत्र अहिंसा
459	11	सम्यग्दर्शन : दीपस्तम्भ
460	12	समाधि से दूर
461	81	सशल्य मृत्यु से भ्रमण
462	106	सर्वत्र अकेला ही अकेला
463	128	समय चूकि पुनि का पछताने
464	134	समता से मुक्ति
465	162	सहस्र गुणधारक भिक्षु
466	186	सर्प केंचुलीवत् ममत्त्व-त्याग
467	196	समत्वदर्शी
468	199	सर्वश्रेष्ठ मौन
469	203	सत्य से सिद्धि
470	204	सत्य सर्वस्व
471	205	सत्य ही भगवान्
472	206	सत्य, प्रकाशक
473	207	सत्य ही सारभूत
474	208	सत्य, सौम्य-तेजस्वी
475	211	सत्य-चमत्कार
476	212	सत्य-प्रभाव
477	213	सत्यनिष्ठ
478	214	सत्य पर प्रतिष्ठित
479	215	सत्य, लंगर
480	216	सत्यवचन, सत्यं शिवं सुन्दरम्
481	217	सत्य कैसा है ?

क्रमांक	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
		श्र
558	103	श्रद्धा से आचरण
559	152	श्रमणत्व, दुष्कर
560	154	श्रमणत्व, अग्निपानवत्
561	155	श्रमणत्व, महान् गुरुतरभार
562	158	श्रमणत्व, दुष्कर
563	189	श्रमण, आत्मानुशासी
564	257	श्रमण-क्रिया क्यों ?
565	388	श्रद्धाशील वीर
		श्रा
566	126	श्रावक का स्वरूप
		श्रे
567	229	श्रेष्ठ निर्ग्रन्थ कौन ?
568	448	श्रेष्ठ क्या ?
		हा
569	244	हास्य में निन्दा प्रिय
570	245	हास्य-वर्जन
571	247	हास्य
572	251	हास्य से मिथ्याभापा
573	314	हाथ कंगन को आरसी क्या ?
		हि
574	166	हितकारी सत्य
575	233	हित-मित प्रिय
		है
576	468	है, वैसा कहो
		हिं
577	298	हिंसा, अश्रेयस्कर
578	422	हिंसा-त्याज्य
579	423	हिंसा सर्वत्र त्याज्य

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
606	498	ज्ञान से विनम्र
607	592	ज्ञानी-शरण

तृतीय परिशिष्ट
अभिधान राजेन्द्रः
पृष्ठ संख्या
अनुक्रमणिका
भाग-५

अभिधान राजेन्द्रः पृष्ठ संख्या अनुक्रमणिका

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग 6
1	8	
2	9	
3	16	
4	32	
5	34	
6	34	
7	43	
8	43	
9	43	
10	43	
11	45	
12	45	
13	45	
14	45	
15	45	
16	46	
17	46	
18	47	
19	47	
20	48	
21	48	
22	49	
23	50	
24	50	
25	60	
26	64	
27	64	
28	64	
29	72	
30	83	
31	83	
32	83	
33	99	
34	104	
35	104	
36	106	
37	106	
38	107	
39	107	
40	107	
41	108	
42	117	
43	117	
44	117	
45	118	
46	118	
47	120	
48	120	
49	121	
50	121	
51	121	
52	122	
53	122	
54	123	
55	123	
56	124	
57	124	एवं भाग 7 पृ. 494 में भी है
58	124	
59	124	
60	126	
61	127	
62	127	
63	130	
64	130	
65	130	
66	130	
67	130	
68	130	
69	130	
70	131	
71	131	
72	131	
73	131	
74	132	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग 6	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग 6
75	133		113	149	
76	133		114	150	
77	133		115	150	
78	134		116	150	
79	134		117	150	
80	134		118	181	एवं पृ 1460 में भी है
81	135		119	191	
82	136		120	191	
83	136		121	191	
84	136		122	191	
85	136		123	192	
86	136		124	193	
87	137		125	193	
88	137		126	219	
89	137		127	243	
90	137		128	248	
91	137		129	248	
92	137		130	251	
93	137	एवं भाग 7 पृ.1144 में भी है	131	254	
94	137		132	255	
95	137		133	274	
96	138		134	276	
97	139		135	277	
98	139		136	278	
99	139		137	283	
100	139		138	285	
101	140		139	285	
102	140		140	294	
103	141		141	294	
104	142		142	294	
105	144		143	294	
106	148		144	294	
107	148		145	294	
108	148		146	294	
109	148		147	294	
110	149		148	294	
111	149		149	294	
112	149		150	294	
			151	295	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग 6
152	295	
153	295	
154	295	
155	295	
156	295	
157	295	
158	295	
159	295	
160	295	
161	295	
162	295	
163	295	
164	295	
165	295	
166	295	
167	295	
168	295	
169	295	
170	295	
171	295	
172	295	
173	295	
174	295	
175	295	
176	296	
177	296	
178	297	
179	297	
180	297	
181	297	
182	299	
183	299-1174	
184	300	
185	300	
186	300	
187	300	
188	300	
189	300	
190	300	
191	301	
192	301	
193	301	
194	301	
195	309	
196	309	एवं भाग 7 पृ. 737 में भी है
197	309	एवं भाग 7 पृ. 737 में भी है
198	309	
199	310	
200	311	
201	316	
202	318	
203	326	
204	326	
205	327	
206	327	
207	327	
208	327	
209	327	
210	327	
211	327	
212	327	
213	327	
214	327	
215	327	
216	327	
217	327	
218	327	
219	327	
220	327	
221	327	
222	327	
223	327	
224	327	
225	328	
226	328-330	
227	328	
228	•328	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या भाग 6	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या भाग 6
229	330	270	443
230	330	271	444
231	330	272	444
232	330	273	444
233	330	274	444
234	330	275	445
235	331	276	448
236	331	277	448
237	331	278	448
238	331	279	448
239	331	280	448
240	331	281	448
241	331	282	456
242	331	283	457
243	331	284	457
244	331	285	457
245	331	286	457
246	331	287	457
247	331	288	458
248	331	289	459
249	331	290	459
250	331	291	459
251	331	292	463
252	337	293	463
253	337	294	463
254	340	295	463
255	340	296	463
256	355	297	496
257	360	298	496
258	426	299	498
259	426	300	510
260	427	301	510
261	431	302	510
262	438	303	510
263	439	304	510
264	442	305	510
265	442	306	510
266	442	307	510
267	443	308	510
268	443	309	579
269	443	310	594

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग ●
311	695	
312	697	
313	697	
314	697	
315	714	
316	715	
317	721	
318	722-1181	
319	723	
320	724	
321	725	
322	727	
323	727	
324	727	
325	727	
326	727	
327	727	
328	727	
329	728	
330	729	
331	729	
332	729	
333	729	
334	731	
335	731-741	
336	731	
337	731	
338	731	
339	731	
340	731	
341	731	
342	731	
343	731	
344	732	
345	733	
346	733	
347	733	
348	733	
349	733	
350	733	
351	734	
352	734	
353	735	
354	735	
355	735	
356	736	
357	736	
358	736	
359	736	
360	736	
361	740	
362	740	
363	740	
364	741	
365	741	
366	741	
367	741	
368	741	
369	741	
370	741	
371	742	
372	742	
373	742	
374	742	
375	742	
376	743	
377	743	
378	743	
379	744	
380	744	
381	745	
382	747	
383	747	
384	747	
385	747	
386	747	
387	747	
388	748	
389	748	
390	748	
391	748	
392	748	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या भाग 6	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या भाग 6
393	749	434	974
394	755	435	1061
395	758	436	1061
396	759	437	1062
397	759	438	1081
398	770	439	1088
399	806-807	440	1093
400	806	441	1094
401	806	442	1094
402	870	443	1094
403	871	444	1094
404	871	445	1144
405	872	446	1144
406	873	447	1144
407	874	448	1144
408	887	449	1144
409	887	450	1144
410	887	451	1144
411	887	452	1148
412	887	453	1154
413	887	454	1158
414	887	455	1158
415	887	456	1158
416	887	457	1158
417	887	458	1159
418	887	459	1159
419	888	460	1159
420	888	461	1159
421	888	462	1159
422	888	463	1160
423	888	464	1160
424	891	465	1160
425	906	466	1160
426	934	467	1160
427	934	468	1160
428	935	469	1160
429	959	470	1160
430	959	471	1160
431	959	472	1160
432	971	473	1161
433	973	474	1161

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग 6
475	1161	
476	1161	
477	1162	
478	1162	
479	1162	
480	1162	
481	1163	
482	1163	
483	1163	
484	1163	
485	1164	
486	1164	
487	1164	
488	1164	
489	1165	
490	1165	
491	1165	
492	1165	
493	1166	
494	1166	
495	1166	
496	1166	
497	1166	
498	1167	
499	1167	
500	1168	
501	1168-1169	
502	1168	
503	1168	
504	1169	
505	1169	
506	1169	
507	1169	
508	1169	
509	1169	
510	1169	
511	1170	
512	1170	
513	1171	
514	1171	
515	1171	
516	1171	
517	1172	
518	1173	
519	1173	
520	1173	
521	1173	
522	1173	
523	1173	
524	1173	
525	1173	
526	1173	
527	1173	
528	1173	
529	1174	
530	1174	
531	1174	
532	1174	
533	1174	
534	1174	
535	1174	
536	1175	
537	1176	
538	1177	
539	1177	
540	1177	
541	1178	
542	1178	
543	1178	
544	1179	
545	1179	
546	1179	
547	1179	
548	1180	
549	1180	
550	1180	
551	1180	
552	1180	
553	1180	
554	1180	
555	1180	
556	1180	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग 6
557	1181	
558	1181	
559	1181	
560	1181	
561	1181	
562	1181	
563	1182	
564	1191	
565	1208	
566	1208	
567	1247	
568	1247	
569	1248	
570	1248	
571	1248	
572	1248	
573	1248	
574	1248	
575	1249	
576	1256	
577	1256	
578	1257	
579	1257	
580	1336	
581	1391	
582	1394	
583	1394	
584	1394	
585	1404	
586	1404	
587	1405	
588	1405	
589	1405	
590	1405	
591	1405	
592	1406	
593	1406	
594	1406	
595	1406	
596	1406	
597	1407	
598	1407	
599	1407	
600	1407	
601	1407	
602	1408	
603	1419	
604	1451	
605	1451	
606	1460	
607	1624	

चतुर्थ
परिशिष्ट
जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः
अध्ययन/गाथा/श्लोकादि
अनुक्रमणिका

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
[illegible]		
1	124	सटीक
2	125	सटीक
आचारांग सूत्र		
3	400	1/1/5/41
4	401	1/1/5/41
5	399	1/1/5/45
6	435	1/1/7/56
7	436	1/1/7/56
8	437	1/1/7/62
9	378	1/2/1/68
10	322	1/2/2/70
11	323	1/2/2/70
12	326	1/2/2/73
13	328	1/2/2/73
14	324	1/2/2/74
15	325	1/2/2/74
16	327	1/2/2/75
17	329	1/2/2/76
18	331	1/2/3/75
19	330	1/2/3/76
20	332	1/2/3/77
21	333	1/2/3/77
22	334	1/2/3/78
23	337	1/2/3/78
24	336	1/2/3/79
25	339	1/2/3/79
26	340	1/2/3/79
27	342	1/2/3/79
28	343	1/2/3/79
29	338	1/2/3/80
30	341	1/2/3/80
31	344	1/2/3/81
32	345	1/2/5/92
33	347	1/2/5/92
34	348	1/2/5/92
35	349	1/2/5/92
36	346	1/2/5/93
37	350	1/2/5/93
38	351	1/2/5/93
39	352	1/2/5/94
40	353	1/2/6/96
41	354	1/2/6/96
42	355	1/2/6/96
43	356	1/2/6/97
44	359	1/2/6/97
45	357	1/2/6/98
46	358	1/2/6/98
47	360	1/2/6/98
48	197	1/2/6/99
49	57	1/4/3/–
50	368	1/5/1/141
51	282	1/5/1/142
52	375	1/5/1/143
53	374	1/5/1/144
54	376	1/5/1/146
55	377	1/5/1/146
56	335	1/5/1/148
57	366	1/5/1/148
58	372	1/5/1/148
59	373	1/5/1/149
60	371	1/5/1/150
61	379	1/5/3/151
62	380	1/5/3/151
63	195	1/5/3/155
64	196	1/5/3/155
65	381	1/5/5/161
66	386	1/5/5/164
67	382	1/5/5/169
68	384	1/5/5/169
69	385	1/5/5/169
70	387	1/5/5/170
71	390	1/5/6/-
72	391	1/5/6/168
73	392	1/5/6/170
74	388	1/5/6/173
75	389	1/5/6/174
76	393	1/5/6/176
77	56	1/8/1/202
78	58	1/8/1/202
79	59	1/8/1/203
80	60	1/8/3/210
81	61	1/8/6/222

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
82	62	1/8/6/222
83	67	1/8/8/17
84	68	1/8/8/17
85	65	1/8/8/18
86	66	1/8/8/18
87	63	1/8/8/19
88	64	1/8/8/19
89	69	1/8/8/19
90	70	1/8/8/20
91	71	1/8/8/20
92	73	1/8/8/23
93	72	1/8/8/26
94	74	1/8/8/29
95	76	1/8/8/36
96	75	1/8/8/38
97	77	1/8/8/38
98	79	1/8/8/39
99	78	1/8/8/40
100	80	1/8/8/40
101	429	2/3/1/–
102	238	2/3/1/–
103	229	2/3/15/2
104	232	2/3/15/3
105	231	2/3/15/781
106	234	2/3/15/781
107	237	2/3/15/781
108	248	2/3/15/781
109	249	2/3/15/781
110	250	2/3/15/781
111	251	2/3/15/781

आचारांग निर्युक्ति

112	321	186/67 पृ.
113	365	245/132 पृ.
114	369	245/132 पृ.
115	370	245/132 पृ.

आचारांग सटीक

116	35	1/2/1

आचारीय सूक्तावली

117	225	34 पृ.
118	227	34 पृ.
119	228	34 पृ.

आवश्यक-कथा

120	563	1/1

आवश्यक सूत्र

121	3	4
122	128	1/836

आवश्यक बृहद्वृत्ति

123	139	3

आवश्यक निर्युक्ति

124	264	1/97
125	265	1/98
126	266	1/98
127	267	1/99
128	269	1/100
129	268	1/101
130	270	1/101
131	271	1/103
132	272	1/103
133	273	1/103
134	274	1/103
135	275	1/104
136	129	1/840
137	123	9/8
138	364	245/132

आवश्यक निर्युक्ति भाष्य

139	426	1/123
140	427	1/123

आतुर प्रत्याख्यान

141	104	64

उत्तराध्ययन सूत्र

142	454	1/2
143	456	1/3
144	455	1/4
145	457	1/4
146	458	1/5
147	459	1/6

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
148	462	1/7
149	460	1/8
150	461	1/8
151	463	1/9
152	464	1/9
153	465	1/9
154	466	1/10
155	471	1/10
156	472	1/10
157	467	1/11
158	468	1/11
159	469	1/12
160	470	1/12
161	473	1/14
162	474	1/14
163	475	1/14
164	476	1/14
165	478	1/15
166	479	1/15
167	480	1/15
168	477	1/16
169	484	1/18
170	481	1/20
171	482	1/21
172	483	1/22
173	486	1/27
174	485	1/28
175	488	1/28
176	487	1/29
177	489	1/37
178	490	1/37
179	491	1/38
180	492	1/39
181	493	1/40
182	494	1/40
183	495	1/41
184	496	1/42
185	497	1/43
186	499	1/44
187	498	1/45
188	42	5/1
189	43	5/3
190	44	5/3
191	45	5/5
192	46	5/7
193	47	5/14-15
194	48	5/16
195	49	5/20
196	50	5/20
197	51	5/21
198	53	5/22
199	52	5/24
200	55	5/29
201	54	5/30
202	145	19/12
203	149	19/12
204	141	19/12
205	142	19/12
206	150	19/13
207	143	19/14
208	146	19/15
209	148	19/15
210	140	19/16
211	147	19/17
212	144	19/18
213	175	19/20
214	171	19/21
215	174	19/22
216	160	19/22-23-24
217	158	19/25
218	162	19/25
219	165	19/26
220	157	19/26
221	166	19/27
222	167	19/27
223	156	19/28
224	173	19/29
225	163	19/30
226	151	19/31
227	168	19/33
228	169	19/36
229	155	19/37
230	170	19/37
231	164	19/38

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
232	172	19/38
233	159	19/39
234	154	19/40
235	161	19/41
236	152	19/42
237	153	19/43
238	177	19/44
239	176	19/46
240	178	19/58
241	179	19/63
242	180	19/73
243	181	19/74
244	182	19/77
245	183	19/84
246	186	19/86
247	184	19/90
248	187	19/91
249	185	19/92
250	188	19/92
251	189	19/93
252	190	19/93
253	194	19/98
254	191	19/99
255	192	19/99
256	193	19/99
257	298	22/19
258	297	22/26
259	299	22/46
260	280	28/2
261	276	28/35
262	278	28/35
263	279	28/35
264	281	28/35
265	277	28/36
266	398	29/10
267	439	29/19
268	606	29/43
269	580	29/45
270	202	29/47
271	34	29/49
272	30	29/53
273	31	29/53

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
274	396	29/54
275	397	29/54
276	132	29/69
277	394	29/70
	उत्तराध्ययन सटीक	
278	253	32
	उपदेश प्रासाद	
279	577	–
280	302	1
	उपासकदशांग सूत्र	
281	29	1/76
	ओघनिर्युक्ति सूत्र	
282	263	53
	ओघनिर्युक्तिभाष्य	
283	607	290
	कल्पसुबोधिका सटीक	
284	314	1/5
285	311	2
	दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र	
286	292	9/12
287	295	9/15
288	293	9/25
289	294	9/26
290	296	9/37
	दशवैकालिक सूत्र	
291	131	5/2/49
292	420	6/9
293	422	6/10
294	423	6/10
295	419	6/11
296	421	6/11
297	409	6/11
298	413	6/12
299	412	6/13
300	414	6/13
301	415	6/14
302	259	6/15

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
303	260	6/16
304	408	6/17
305	411	6/18
306	416	6/19
307	410	6/20
308	418	6/21
309	417	6/22
310	303	6/23
311	308	6/26
312	430	8/2
313	431	8/2
314	300	8/28
315	36	8/30
316	37	8/30
317	500	9/1/1
318	502	9/1/2
319	507	9/1/5
320	503	9/1/6
321	501	9/1/7
322	510	9/1/7
323	504	9/1/8
324	505	9/1/9
325	506	9/1/10
326	508	9/1/11
327	509	9/1/12
328	511	9/2/2
329	512	9/2/2
330	514	9/2/3
331	515	9/2/4
332	513	9/2/10
333	516	9/2/11
334	517	9/2/12
335	527	9/2/22
336	528	9/2/22
337	518	9/2/23
338	522	9/3/1
339	523	9/3/1
340	525	9/3/2
341	521	9/3/3
342	520	9/3/4
343	526	9/3/5
344	524	9/3/6
345	519	9/3/7

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
346	535	9/3/8
347	534	9/3/9
348	529	9/3/11
349	530	9/3/11
350	533	9/3/11
351	532	9/3/12
352	531	9/3/14

दशवैकालिक चूलिका

353	567	2/2
354	569	2/2
355	568	2/3
356	570	2/9
357	574	2/12
358	571	2/13
359	572	2/14
360	573	2/15

दशवैकालिक निर्युक्ति

361	424	290
362	395	291
363	453	322

द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका सटीक

364	262	13/6
365	536	29/5
366	537	29/17
367	201	31/18

धर्मसंग्रह

368	203	2/26
369	204	2/59 पृ
370	301	2/73
371	365	2/83
372	126	2/121

धर्मसंग्रह सटीक

373	428	2

धर्मबिन्दु

374	564	1
375	290	2/75
376	291	2/76

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
	धर्मरत्न प्रकरण	
377	560	1
378	562	1/4
379	318	1/8
380	445	1/3
381	446	1/3
382	448	1/3
383	449	1/3
	धर्मरत्नप्रकरण सटीक	
384	566	1/6/14
	नवस्मरण	
385	138	6
	निशीथ चूर्णि	
386	255	91
387	254	92
	निशीथ भाष्य	
388	256	225
389	257	264
390	258	363
391	432	5252
392	433	5284
393	434	5291
394	440	6227
	नीति द्विषष्ठिका	
395	312	29
	नीतिशतक	
396	450	67
397	451	67
	नंदीसूत्र	
398	135	77
	पातंजल योगदर्शन	
399	118	2/35
	प्रशमरति प्रकरण	
400	310	156
	प्रश्नव्याकरण	
401	205	2/7/24

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
402	206	2/7/24
403	207	2/7/24
404	208	2/7/24
405	209	2/7/24
406	210	2/7/24
407	211	2/7/24
408	212	2/7/24
409	213	2/7/24
410	214	2/7/24
411	215	2/7/24
412	216	2/7/24
413	217	2/7/24
414	218	2/7/24
415	219	2/7/24
416	220	2/7/24
417	221	2/7/24
418	222	2/7/24
419	223	2/7/24
420	224	2/7/24
421	226	2/7/24
422	230	2/7/25
423	233	2/7/25
424	235	2/7/25
425	236	2/7/25
426	239	2/7/25
427	240	2/7/25
428	241	2/7/25
429	242	2/7/25
430	243	2/7/25
431	244	2/7/25
432	245	2/7/25
433	246	2/7/25
434	247	2/7/25
	बृहत्कल्प भाष्य	
435	93	1169
	बृहदावश्यक भाष्य	
436	402	3926
437	404	3938
438	405	3939
439	406	3948
440	407	3951
441	403	3963

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
	भगवती सूत्र	
442	315	1/6/25[1]
443	602	1/8/9
444	603	5/8/10
	भगवद् गीता	
445	383	2/20
446	136	3/6
	महाप्रत्याख्यान	
447	578	55
448	579	57
449	103	106
	महाभारत-उद्योग पर्व	
450	289	33/33
	महाभारत-आदि पर्व	
451	576	65/50
	मरण समाधि प्रकीर्णक	
452	81	51
453	83	98
454	82	102
455	86	103
456	85	105
457	84	111-112
458	94	121-122
459	90	134
460	89	137
461	87	138
462	88	138
463	95	139
464	97	139
465	91	144
466	92	147
467	96	189
468	98	198
469	100	205
470	99	214
471	101	243
472	102	250
473	105	405
474	108	583
475	107	584
476	106	586
477	109	589
478	111	614
479	112	623
480	110	632
481	114	641
482	116	645
483	115	646
484	117	655
485	113	703
	मनुस्मृति	
486	130	2/145
487	5	5/53
488	4	5/55
489	32	8/16
490	575	11/54
	यशस्तिलक चंपू	
491	313	1/35
	योगदृष्टि समुच्चय	
492	137	23
	योगशास्त्र	
493	133	2/3
494	307	3/56
495	305	3/60
496	304	3/67
	विशेषावश्यक भाष्य	
497	1	22
498	2	24
	व्यवहार सूत्र	
499	425	10/3
500	605	10/37
	व्यवहार भाष्य	
501	442	7/215
502	444	7/216
503	441	7/217
504	443	7/316

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि

सूत्रकृतांग

505	319	1/1/4/6
506	320	1/1/4/12
507	38	1/2/2/2
508	39	1/2/2/2
509	40	1/2/2/2
510	581	1/6/4
511	582	1/6/23
512	583	1/6/23
513	584	1/6/23
514	585	1/8/3
515	586	1/8/6
516	590	1/8/7
517	591	1/8/7
518	587	1/8/8
519	589	1/8/11
520	588	1/8/12
521	592	1/8/13
522	594	1/8/13
523	593	1/8/15
524	595	1/8/15
525	596	1/8/16
526	599	1/8/24
527	597	1/8/25
528	598	1/8/25
529	600	1/8/25
530	601	1/8/26
531	10	1/11/10
532	9	1/11/11
533	7	1/11/12
534	8	1/11/12
535	13	1/11/22
536	14	1/11/22
537	11	1/11/23
538	15	1/11/24
539	12	1/11/25
540	16	1/11/28
541	17	1/11/32
542	18	1/11/37
543	538	1/14/6
544	540	1/14/6

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
545	539	1/14/7
546	541	1/14/9
547	542	1/14/9
548	543	1/14/13
549	544	1/14/19
550	545	1/14/19
551	546	1/14/19
552	547	1/14/19
553	550	1/14/21
554	551	1/14/21
555	553	1/14/21
556	549	1/14/22
557	552	1/14/22
558	548	1/14/23
559	554	1/14/23
560	555	1/14/24
561	556	1/14/24
562	558	1/14/25
563	559	1/14/25
564	557	1/14/26
565	561	1/14/26
566	127	2/2/25

संथारपोरिसी सूत्र

567	286	11

संबोध सत्तरि

568	134	2
569	447	70

स्कन्दपुराण-कपालमोचन स्तोत्र

570	306	1

स्थानांग सूत्र

571	261	1/1/7
572	41	1/1/26
573	252	3/4/203
574	33	4/4/4/373
575	309	9/9/667
576	316	10/10/704

स्थानांग टीका

577	604	5/1

स्थानांग सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
578	452	5/3

स्याद्वाद मंजरी

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
579	6	209 पृ.

हारिभद्रीयाष्टक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
580	438	12/1
581	25	19/1

हारिभद्रीय टीका

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
582	119	26
583	120	26
584	121	26
585	122	26

ज्ञाताधर्म कथा

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
586	317	1 12

ज्ञानसार

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
587	19	2/1
588	20	2/2
589	21	2/4
590	22	2/6
591	24	2/7
592	23	2/8
593	284	4/1
594	283	4/2
595	285	4/3
596	287	4/4
597	288	4/6
598	198	13/1
599	199	13/7
600	200	13/8
601	27	16/2
602	26	16/3
603	28	16/7
604	361	23/2
605	363	23 3
606	362	23/5
607	367	23/8

पञ्चम
परिशिष्ट
'सूक्ति-सुधारस'
में प्रयुक्त
संदर्भ-ग्रंथ सूची

पञ्चम परिशिष्ट

१. अन्ययोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका सटीक
२. आचारांग सूत्र
३. आचारांग निर्युक्ति
४. आगमीय सूक्तावली
५. आतुर प्रत्याख्यान
६. आवश्यक कथा
७. आवश्यक सूत्र
८. आवश्यक निर्युक्ति
९. आवश्यक निर्युक्तिभाष्य
१०. आवश्यक बृहद्वृत्ति
११. उपासकदशांग सूत्र
१२. उत्तराध्ययन सूत्र
१३. उत्तराध्ययन सटीक
१४. उपदेश प्रासाद
१५. ओघनिर्युक्ति
१६. ओघनिर्युक्ति भाष्य
१७. कल्पसुबोधिका सटीक
१८. दशाश्रुतस्कन्ध
१९. दशवैकालिक सूत्र
२०. दशवैकालिक चूलिका
२१. दशवैकालिक निर्युक्ति
२२. द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका
२३. धर्मसंग्रह
२४. धर्मसंग्रह सटीक
२५. धर्मबिन्दु
२६. धर्मरत्न प्रकरण
२७. धर्मरत्न प्रकरण सटीक
२८. नयभरण
२९. नन्दीसूत्र
३०. निशीथ चूर्णि
३१. निशीथ भाष्य

३२. नीतिशतक
३३. नीति द्विषष्टिका
३४. पातञ्जल योगदर्शन
३५. प्रश्नव्याकरण सूत्र
३६. प्रशमरति प्रकरण
३७. बृहत्कल्प भाष्य
३८. भगवती सूत्र
३९. भगवद्गीता
४०. महाप्रत्याख्यान
४१. महाभारत-उद्योगपर्व
४२. महाभारत-आदिपर्व
४३. मरणसमाधि प्रकीर्णक
४४. मनुस्मृति
४५. *यशस्तिलक* चम्पू
४६. योगदृष्टि समुच्चय
४७. योगशास्त्र
४८. व्यवहारसूत्र
४९. व्यवहार भाष्य
५०. सूत्रकृतांग सूत्र
५१. संथारापोरिसी सूत्र
५२. सम्बोध सत्तरि
५३. स्कन्दपुराण-कपालमोचन-स्तोत्र
५४. स्थानांग सूत्र
५५. स्याद्वादमंजरी
५६. श्राद्धविधि
५७. हारिभद्रीयाष्टक
५८. हारिभद्रीय टीका
५९. ज्ञाताधर्मकथासूत्र
६०. ज्ञानसार

विश्वपूज्य प्रणीत

सम्पूर्ण वाङ्मय

6

विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय

अभिधान राजेन्द्र कोष [1 से 7 भाग]

अमरकोष (मूल)

अघट कुँवर चौपाई

अष्टाध्यायी

अष्टाह्निका व्याख्यान भाषान्तर

अक्षय तृतीया कथा (संस्कृत)

आवश्यक सूत्रावचूरी टब्बार्थ

उत्तमकुमारोपंन्यास (संस्कृत)

उपदेश रत्नसार गद्य (संस्कृत)

उपदेशमाला (भाषोपदेश)

उपधानविधि

उपयोगी चौवीस प्रकरण (बोल)

उपासकदशाङ्गसूत्र भाषान्तर (बालावबोध)

एक सौ आठ बोल का थोकड़ा

कथासंग्रह पञ्चाख्यानसार

कमलप्रभा शुद्ध रहस्य

कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म (श्लोक व्याख्या)

करणकाम धेनुसारिणी

कल्पसूत्र बालावबोध (सविस्तर)

कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी

कल्याणमन्दिर स्तोत्रवृत्ति (त्रिपाठ)

कल्याण (मन्दिर) स्तोत्र प्रक्रिया टीका

काव्यप्रकाशमूल

कुवलयानन्दकारिका

केसरिया स्तवन

खापरिया तस्कर प्रबन्ध (पद्य)

गच्छाचार पयन्नावृत्ति भाषान्तर

गतिषष्ठ्या - सारिणी

ग्रहलाघव
चार (चतुः) कर्मग्रन्थ - अक्षरार्थ
चन्द्रिका - धातुपाठ तरंग (पद्य)
चन्द्रिका व्याकरण (2 वृत्ति)
चैत्यवन्दन चौवीसी
चौमासी देववन्दन विधि
चौवीस जिनस्तुति
चौवीस स्तवन
ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टकम्
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति बीजक (सूची)
जिनोपदेश मंजरी
तत्त्वविवेक
तर्कसंग्रह फक्किका
तेरहपंथी प्रश्नोत्तर विचार
द्वाषष्टिमार्गणा - यन्त्रावली
दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रचूर्णी
दीपावली (दिवाली) कल्पसार (गद्य)
दीपमालिका देववन्दन
दीपमालिका कथा (गद्य)
देववंदनमाला
घनसार - अघटकुमार चौपाई
ध्रष्टर चौपाई
धातुपाठ श्लोकबद्ध
धातुतरंग (पद्य)
नवपद ओली देववंदन विधि
नवपद पूजा
नवपद पूजा तथा प्रश्नोत्तर
नीतिशिक्षा द्वय पच्चीसी
पंचसप्तति शतस्थान चतुष्पदी
पंचाख्यान कथासार
पञ्चकल्याणक पूजा

पञ्चमी देववन्दन विधि
पर्यूषणाष्टाह्निका - व्याख्यान भाषान्तर
पाइय सद्म्बुही कोश (प्राकृत)
पुण्डरीकाध्ययन सज्झाय
प्रक्रिया कौमुदी
प्रभुस्तवन - सुधाकर
प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार
प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका
प्रश्नोत्तर मालिका
प्रज्ञापनोपाङ्गसूत्र सटीक (त्रिपाठ)
प्राकृत व्याकरण विवृत्ति
प्राकृत व्याकरण (व्याकृति) टीका
प्राकृत शब्द रूपावली
बारेव्रत संक्षिप्त टीप
बृहत्संग्रहणीय सूत्र चित्र (टब्बार्थ)
भक्तामर स्तोत्र टीका (पंचपाठ)
भक्तामर (सान्वय - टब्बार्थ)
भयहरण स्तोत्र वृत्ति
भर्त्तरीशतकत्रय
महावीर पंचकल्याणक पूजा
महानिशीथ सूत्र मूल (पंचमाध्ययन)
मर्यादापट्टक
मुनिपति (राजर्षि) चौपाई
रसमञ्जरी काव्य
राजेन्द्र सूर्योदय
लघु संघयणी (मूल)
ललित विस्तरा
वर्णमाला (पाँच कक्का)
वाक्य-प्रकाश
बासठ मार्गणा विचार
विचार - प्रकरण

विहरमाण जिन चतुष्पदी
स्तुति प्रभाकर
स्वरोदयज्ञान - यंत्रावली
सकलैश्वर्य स्तोत्र सटीक
सद्य गाहापयरण (सूक्ति-संग्रह)
सप्ततिशत स्थान-यंत्र
सर्वसंग्रह प्रकरण (प्राकृत गाथा बद्ध)
साधु वैराग्याचार सज्झाय
सारस्वत व्याकरण (3 वृत्ति) भाषा टीका
सारस्वत व्याकरण स्तुबुकार्थ (1 वृत्ति)
सिद्धचक्र पूजा
सिद्धाचल नव्वाणुं यात्रा देववंदन विधि
सिद्धान्त प्रकाश (खण्डनात्मक)
सिद्धान्तसार सागर (बोल-संग्रह)
सिद्धहैम प्राकृत टीका
सिंदूरप्रकर सटीक
सेनप्रश्न बीजक
शंकोद्धार प्रशस्ति व्याख्या
षड् द्रव्य विचार
षड्द्रव्य चर्चा
षडावश्यक अक्षरार्थ
शब्दकौमुदी (श्लोक)
'शब्दाम्बुधि' कोश
शांतिनाथ स्तवन
हीर प्रश्नोत्तर बीजक
हैमलघुप्रक्रिया (व्यंजन संधि)
होलिका प्रबन्ध (गद्य)
होलिका व्याख्यान
त्रैलोक्य दीपिका - यंत्रावली ।

लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. आचाराङ्ग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए. पीएच.डी.

२. आनन्दघन का रहस्यवाद (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.डी.

३. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (प्रथम खण्ड)

४. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति सुधारस (द्वितीय खण्ड)

५. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (तृतीय खण्ड)

६. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (चतुर्थ खण्ड)

७. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (पंचम खण्ड)

८. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (षष्ठम खण्ड)

९. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (सप्तम खण्ड)

१०. **'विश्वपूज्य'**: (श्रीमद्राजेन्द्रसूरि: जीवन-सौरभ) (अष्टम खण्ड)

११. अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका (नवम खण्ड)

१२. अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम (दशम खण्ड)

१३. राजेन्द्र सूक्ति नवनीत (एकादशम खण्ड)

१४. जिन खोजा तिन पाइयाँ (प्रथम महापुष्प)

१५. जीवन की मुस्कान (द्वितीय महापुष्प)

१६. सुगन्धित-सुमन(FRAGRANT-FLOWERS) (तृतीय महापुष्प)

प्राप्ति स्थान :

श्री मदनराजजी जैन

द्वारा - शा. देवीचन्दजी छगनलालजी

आधुनिक वस्त्र विक्रेता, सदर बाजार,

पो. भीनमाल-३४३०२९

जिला-जालोर (राजस्थान)

☎ (02969) 20132